
राजस्थान की वीर रानीयां
Mohanlal Artist

I have gone through

ओ३म्

राजस्थान

की

वीर रानियां

अर्थात्

भारतवर्ष की सराहनीय वीर महिलाओं के

मनोरंजक और शिक्षादायक वृत्तान्त।

लेखक—

श्रीयुत बाबू शिवव्रतलाल वर्म्मन

प्रकाशक—

लाजपतराय पृथ्वीराज साहनी

पुस्तक विक्रेता लुहारी दरवाज़ा लाहौर

मुद्रक—

भारद्वाज प्रिण्टिङ्ग प्रेस सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर

सन् १९२९—संवत् १९८६ वि०

छठीवार २०००] मूल्य सजिल्द १।)

विषय-सूची

यह बात सुनकर सास श्वसुर दोनों के कान खड़े हुए और आज्ञा दी, अच्छा जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो दान दिया करो, बहु ने धीरे धीरे इसी प्रकार उन सब का स्वभाव बदल दिया और अन्त में सब धार्मिक होकर सत्संग और दान पुण्य करने लगे, पहिले की बुरी आदतें जाती रहीं, उन के यहां अतिथि सत्कार होने लगा। सत्य है ऐसे स्वभाव की कन्यायें दोनों कुल तार देती हैं, और उन का पवित्र प्रभाव अपना कार्य्य किए बिना नहीं रहता।

प्रेमी ढूंढत मैं फिरूं, प्रेमी मिले न कोय।
प्रेमीजन के दर्श से, सब जग प्रेमी होय ॥१॥
जैसी लौ पहिले लगे, वैसी निबहे और।
अपनी देहकी को कहे, तारे पुरुष करोर ॥२॥
प्रेम भाव एक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
चाहे घर में वास कर, चाहे बन को धाय ॥३॥
प्रेमीजन के दर्श से, छूटें कष्ट क्लेश।
प्रेमभाव एक चाहिये, क्या गिर ही क्या भेष ॥४॥
कथा कीर्त्तन करन की, जाके निशदिन रीत।
कहें कबीर ता दाससे, निश्चय कीजे प्रीत ॥५॥

कथा कीर्त्तन रात दिन; जाके उद्यम एह ।
कहें कबीर ता दास के; हम चरणन की केह ॥६॥

बुरे पति ।

हिन्दुओं में स्त्रियों की सुशीलता और सभ्यता में इतनी त्रुटि नहीं है, जितनी कि पुरुषों में है। हम इस को बहुत बड़ा सौभाग्य समझते हैं। यद्यपि स्त्रियों को काला अक्षर भैंस बराबर है, वह अंगरेज़ी सभ्यता से अपरिचित हैं, वह संसार के हालात से अवगत नहीं है तथापि एक प्रकार उन की सभ्यता साङ्गोपाङ्ग है। परन्तु किसी किसी हिन्दू पति से ईश्वर की पनाह! यह अपनी पत्नि के साथ ऐसा वर्ताव करते है जो सभ्य मनुष्यों में सदैव निन्दनीय है। बुरा भला कहना, निरादरता सूचक शब्द उच्चारण करना, अनपेक्षा पूर्वक वर्ताव करना तो साधारण बात है। उन अबलाओं के लिये जीवन भार होजाता है। उन के दिन निराशा, शोक और दुःख में बीतते हैं। संसार उन की दृष्टि में शोकमय बन जाता है। और हम समझते हैं कि कतिपय अवसरों पर वह पति के जीते जी वैधव्य की आपदायें भोगती हैं, तथापि उन की विशेषता को देखिए, कैसी गम्भीरता और धैर्य्य पूर्वक अपने मन को वश में किये रहती हैं और पति चाहे अन्यायी भी हो परन्तु उसके विरुद्ध एक शब्द भी मुख से नहीं निकालतीं।

हम ने अपने एक बन्धु के घर में देखा उन की स्त्री पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियों से अधिक प्रेम करती थी। एक दिन हम ने पूछा, चाची जी! तुम को क्या पुत्र इतने प्यारे नहीं हैं? वह बोली भय्या तुम क्या कहते हो। तुम सब मेरी आंख के तारे हो, पुत्र तथा पुत्रियें दोनों मुझ को प्यारे हैं, परन्तु मैं लड़कियों को इस लिये अधिक प्यार करती हूं कि वह अपने साथ यह विचार लेकर जांय कि वह जहां जायेगी उस घर की लक्ष्मी होंगी, यदि उन का आदर सन्मान माता के घर में होगा तो सास श्वसुर के घर में भी वह अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रख सकेंगी। इस के अतिरिक्त तुम नहीं जानते कि विवाह के समय माता पिता भाई आदि सब कन्याओं के चरण पूजते हैं, क्या तुमने कभी किसी माता को भी अपने पुत्र के पांव पूजते देखा है? इस से प्रमाणित है कि स्त्रियों की प्रतिष्ठा पुरुषों से अधिक होनी चाहिये। स्त्रियां गृह की प्रतिष्ठा समझी जाती है। यदि इन का तिरस्कार और निरादर करोगे तो फिर कुल की प्रतिष्ठा क्या खाक रहेगी। मैं अपने पुत्रों को सदा स्मरण कराती रहती हूं कि देखो किसी बहिन को मत मारना, एक दिन इन के चरण पूजने पड़ेंगे, और इस लिये वह केवल अपनी ही बहिनों का सन्मान न करेंगे, प्रत्युत जब उनके यहां छोटी बड़ी बहुयें आयेंगी तो वह उनका भी आदर सन्मान करेंगे। "हम ने कहा चाची जी! तुम बड़ी बुद्धिमति हो" वह हँसने लगी।

आहा ! यदि अन्य गृहों की मातायें भी इसी प्रकार अपने पुत्रों को शिक्षा देती होती तो श्रेष्ठ हिन्दुओं के घरों में कभी अनाचारी और कुटिल स्वभाव वाले पति उत्पन्न न होते।

मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई माता का उपदेश।

एक वृद्धा स्त्री जिस समय मरने लगी, उसके बाल बच्चे खाट के समीप खड़े थे। उसने अपने पुत्रों को एक एक करके निकट बुलाया। और सब को यही उपदेश दिया कि तुम लोग सच्चे और धर्मात्मा बनो, जब उस का बड़ा पुत्र पास आया, वृद्धा माता का हाथ कांपता था उसने पुत्र का हाथ पकड़ लिया और रोकर कहने लगी—"पुत्र मैं इस संसार से जा रही हूं, परन्तु शरीर त्यागने से पहिले तुझ से एक प्रतिज्ञा लेना चाहती हूं, तुम इस समय अपनी मरती हुई माता के सिरहाने प्रण करो कि तुम अपने समस्त दुर्व्यसन छोड़ दोगे और सच्चे धर्मात्मा बनोगे। पुत्र ने सोच संकोच किया, क्योंकि उसके जविन की गति ठीक और शास्त्र अनुकूल नहीं थी, माता का वचन सुनते ही वह कांप गया। लज्जा से गर्दन नीची कर ली और कुछ काल तक विचार सागर में डूबा हुआ सोचता रहा, निदान उसने आंख उठा कर सच्चे मन से प्रसन्न होकर माता से कहा—"मैं आपकी

आज्ञा पालन करूंगा" दुर्बल माता यह सुन अत्यन्त प्रसन्न हुई और उस का मुख आनन्द से चमकने लगा। उसने कहा—पुत्र तुम आज मेरी कोख से उत्पन्न हुए हो और अपने वंश की वृद्धि करोगे। मुझे शान्ति मिल गई है अब मैं जाती हूं। और तब उसने अपने प्राणों को शान्ति पूर्वक त्यागा।

माता के देहान्त के पीछे पुत्र की दशा बहुत दीन हो गई, वह रात दिन परमात्मा से प्रार्थना किया करता, कुछ दिन के अनन्तर वह बाहर आने जाने लगा। परन्तु उसकी अवस्था में विचित्र परिवर्तन आगया, पुराने मित्रादि पास आते तो वह उनसे कनाई काट जाता था, एक बार वह इनके पाश में फिर फंस गया और सम्भव था कि अपनी अभ्यस्त दुष्क्रियाओं को फिर करने लग जाय, परन्तु ठीक उसी समय उसके सामने उसकी माताकी मूर्ति आ उपस्थित हुई और उसे कठोर शब्दों में इस प्रकार सम्बोधन करने लगी-"पुत्र! तेरी प्रतिज्ञा किधर गई! वह उसी समय अपने नीच मित्रों के पास से उठकर चला आया और उस दिन से फिर कभी दुष्क्रिया का नाम नहीं लिया। उस का जीवन सुधर गया और सचमुच उस माता के उपदेश के कारण उस वंश में कल्याण और सुख का आवेश हो गया।

नहिं उपदेश कथा में, अथवा किसी सभा में।
चाहो जो प्राकृत भलाई मित्रो, दुनियां की आभा में॥

पावोगे यह निश्चय जानो, केवल मात वचन में।
शर्त बांधि ईशान देवकहे, सोच लेवो निज मनमें॥

प्रेजीडण्ट रूजवेल्ट की सम्पदा।

प्रेज़ीडएट रुज़वेल्ट ने वाशिङ्गटन नगर की अएडरग्रेजुएट स्त्रियों की क्लब में निम्नलिखित वक्तृता की थी।

"तुम गृह प्रबन्ध का आदर्श सर्वदा अपने सन्मुख रक्खो, तुम्हारी परस्पर सेवा का आदर्श इस प्रकार का हो कि तुम्हारी प्रतिष्ठा और आत्म सन्मान स्थिर रहे। पहिली शिक्षा जो प्रत्येक मनुष्य को सीखनी चाहिए, वह यह है कि वह निष्काम सेवा और परोपकारी बने और सर्वप्रिय बनने की चेष्टा करे। तुम प्रयत्न करो कि किस प्रकार औरों का हित कर सकती हो। परन्तु स्मरण रक्खो कि इसके बिना निष्काम सेवा का भी कोई हितकर परिणाम नहीं हो सकता, यदि तुम अपनी बुद्धि से काम लेना नहीं जानती और अपना सन्मान आप नहीं कर सकती।

मातायें अपनी सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करतीं, यदि वह उन को यह ध्यान न दिलाती रहें कि यह संसार समस्या युक्त है। और वह इसमें रहकर सुख और सहज स्वभावसे अपना काम नहीं कर सकते। उनका कर्त्तव्य है कि वह उन्हें स्मरण कराती रहें कि अपनी मर्यादा और

जीवन रक्षा के निमित्त उन को कई प्रकार का परिश्रम तथा उद्योग करना पड़ेगा और इसके अतिरिक्त उनका औरों का भी ध्यान रखना आवश्यक होगा " कोई पुरुष सभ्य नहीं, यदि वह अपनी शक्ति परोपकार में नहीं लगाता, कोई स्त्री सभ्य नहीं, यदि वह पुरुष की कमाई को उचित रूप से सम्भालना नहीं जानती"। स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वह सोचती रहें कि घर की वास्तविक आवश्यकतायें क्या हैं और जिस समय वह ऐसा करने लग जावें तो वह धन्य हैं। मेरे विचार में सौ में से निन्यानवें धन एकत्र करने के अतिरिक्त और किसी बात में हर्ष नहीं मानतीं। धनवान् मनुष्य जाति के लिए बहुत हितकर काम कर सकते हैं, परन्तु उनसे इतना लाभ जाति को नहीं पहुंचता जितना विविध प्रकार के व्यवसाय और परिश्रम करने वालों से पहुंचता है। किसी अंश तक नवयुवक स्त्री पुरुषों के लिए धन का एकत्र करना भी आवश्यक है। और जब इतनी कृतकार्य्यता प्राप्त होगई वह मनुष्य के आनन्द के विचार से इतना आवश्यक नहीं रहता। अन्त में इसका लोभ पूर्णतः जाता रहता है और धनको केवल धन समझकर कमाना एक प्रकार की बुराई मालूम होने लगती है।

विवाह का प्रभाव।

विवाह करने के जहां अन्य उद्देश हैं वहां एक यह भी प्रयोजन है कि मनुष्य सुखी रहे। परन्तु यह आनन्द उस समय

तक प्राप्त नहीं होता, जब तक कि स्वभाव को ठीक न कर लिया जाय और स्त्री के साथ चिरकाल तक जीवन व्यतीत करने का अवसर न मिले। स्त्री उस समय तक प्राकृत आनन्द का हेतु नहीं बनती जब तक उसको चिरकाल तक सुख दुःख की सांझी होने का अवसर न मिले। स्त्री पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है कि एक दूसरे के अच्छे बुरे स्वभाव को अच्छी प्रकार समझ लें। उसका फल यह होता है कि उनकी परस्पर में घनिष्ट मित्रता स्थापित होजाती है और वह एक दूसरे को अपने व्यवहार से सुखी रखने की चेष्टा करते हैं। यूरोपीयन लोगों में सौ में से चालीस के विवाह दुखदाई प्रमाणित होते हैं। और न्यायालय में तलाक के द्वारा उनका अन्त होजाता है। परन्तु हिन्दुओं में सौ में से ९९ विवाह हितकर प्रमाणित होते हैं। यूरोप में कोर्टशिप अर्थात् स्त्री–उपासन की रीति है। भारतवर्ष में माता पिता विवाह करते हैं। यूरोप वाले समझते हैं यह अन्धों का विवाह जीवन उद्देश्य को पूरा न करता होगा उनमें प्रेम और अनुराग कहां होगा। परन्तु हममें से प्रत्येक कह सकता है कि यदि किसी जगह गृहस्थाश्रम का सुख दुःख देखने में आया है तो वह हिन्दुओं का ही घर है जहां स्त्री सच्चे आत्मत्याग का जीवन व्यतीत करती है। और त्याग का जीवित तथा जागृत दृष्टान्त बन कर दिखलातीं रहती है कि स्त्री जाति का वास्तविक महत्व क्या है। इसका मुख्य कारण यह है, कि प्राचीन कथाओं का प्रभाव स्त्रियों को

सुसभ्य बना देता है और कुछ काल के पश्चात् वह पति को अपना देवता समझने लगती है। यह हिन्दू स्त्रियां ही हैं जो कहा करती हैं "कि मेरा दाहकर्म अर्थात् मृतक संस्कार पति के हाथ से हो"। यूरोप की स्त्रियां पति के लिए भयानक मूर्तियें हैं उनका रहन सहन बहुत विचित्र और अधूरा है। हिन्दू स्त्रियां सच्ची देवियां हैं वह जाति की रक्षक और धर्म्म की अधिष्ठात्री हैं। यदि वह देवियां ऐसी न होतीं तो आज हिन्दू जाति की क्या दशा होती।

स्त्री पुरुष का सम्बन्ध भी कितना विचारणीय है। पुरुष में यदि बल है तो स्त्री सौन्दर्य सम्पन्न है, उस में शक्ति है तो उस में लावण्यता है। पुरुष शत्रुओं से लड़ता, खेत में काम करता और कार्य्यालय में परिश्रम पूर्वक लगा रहता है। स्त्री उसकी सच्ची साथी बनी हुई खान पान आदि का प्रबन्ध करती है और सुख की सामग्री एकत्र करती हुई उस के जीवन को सुखी और मधुर बनाती है। वह लड़ता झगड़ता है स्त्री उसके स्वभाव को मृदु और प्रिय वचनों द्वारा ठीक करती है। सम्भव है कि उसका जीवन दुःख और शोकमय हो परन्तु पतिव्रता स्त्री की संगति में वह सारे दुःख भूल जाता है। उसकी उपस्थिति ही धैर्य और शान्ति का कारण बन जाती है। स्त्री के बिना पुरुष कठोर, निकम्मा, क्रोधी और चिड़चिड़ा होता है। जिस प्रकार एक बड़े लम्बे आम के वृक्ष से एक सुन्दर बेल लिपटी हुई उसके तने को अपने फूलों से सुशोभित करती है उसी प्रकार स्त्री

पुरुष के आस पास आनन्द और सुखकी सामिग्री पसार देती है। पुरुष स्त्री बिना आधा है और यह आधा भी अच्छा नहीं। स्त्रियें लक्ष्मी और स्वरस्ती का रूप हैं संस्कृत में जितने शब्द मनुष्य के गुणोंको दर्शाते हैं वह सब स्त्रीलिंग वाचक हैं। क्या आश्चर्य्य है कि कोश के बनाने वालों ने स्त्रियों को ही गुणों का भण्डार समझ लिया हो। गृहस्थ-धर्म्म का पालन करने वालोः—

पतिव्रता गृह लक्ष्मी; सुत हो आज्ञाकारी।
जीवनमुक्त सो जगतमें; धन्य पुरुष और नारी॥

स्त्री पुरुष के प्रेम और आकर्षण का केन्द्र है। और ज्यों २ उन की आयु व्यतीत होती जाती है, त्यों २ उस प्रेम की महिमा भी प्रकट होती जाती है॥

स्त्रियों की शिक्षा।

कन्या पाठशालायें जो स्थान २ पर खुली हैं उन में स्त्रियों की शिक्षा अक्षर अभ्यास के अतिरिक्त यदि कुछ और होती है तो वह खाना पकाना और सीना परोना है। परन्तु गृह प्रबन्ध का काम केवल इतना ही नहीं है। हम नही जानते कन्या पाठशालाओं की अध्यापकायें लड़कियों के खेल कूद जानती है अथवा नहीं जिस से हमारा अभिप्राय गुड़ियों के खेल से है जिसके द्वारा वह गृस्थाश्रम की सम्पूर्ण बातें सीख जाती है। हमारे विचार में यदि इस प्रकार के खेल पाठ

शालाओं में प्रचलित किए जांय तो खेल कूद में बहुत सी हितकर शिक्षा उन्हें प्राप्त हो सकती है। पुस्तकों का पढ़ना इतना लाभदायक नहीं होसकता, जितनी की हृदय की शिक्षा हो सकती है। हम शोक के साथ देख रहे हैं कि वर्त्तमान शिक्षा पहिले की अपेक्षा अधिक त्रुटि पूर्ण है। इस का परिणाम यह होगा कि स्त्रियां व्याख्यान देना अधिक पसन्द करने लगेंगी, और उनकी शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य लोप हो जायगा। जिन लोगों को इस आवश्यक विषय से सम्बंध है उन्हें अवश्य इस ओर ध्यान देना चाहिए।

गृह प्रबन्ध।

स्त्रियों में गृह-प्रबन्ध की अयोग्यता एक बहुत बड़ा दोष है और जो उपाय इस त्रुटि के छिपाने के लिए किए जाते हैं वह और भी हानि-कारक प्रतीत होते हैं। लोग कहा करते हैं, घर का काम काज सीख लेना सहज है, जब सिर पर पड़ेगा आपही आजायगा, विवाह होजाने पर जब सिरपर भार पड़ेगा आप सीख लेंगी, परन्तु यह विचार पूर्णतः निकृष्ट और रद्दी है, यह तो वही बात हुई जैसे कोई नवयुवक कहे कि मैं कोई व्यवसाय नहीं सीखता जब समय आयेगा आपही कर लूंगा, और सब कुछ आजायेगा। किन्तु प्रत्येक जन समझ सकता है कि ऐसे मनुष्य कभी कृतकार्य्य नहीं होते। जो स्त्री विवाहित होनेसे पहिले गृह-प्रबन्ध के सीखने की इच्छा रखती

है सम्भव है वह दो चार महीने में सीख ले परन्तु माता के नेतृत्व में रहकर वह यह सब बड़ी सुगमता से सीख सकती है। हमारे घरों में प्रायः वृद्ध स्त्रियां कन्याओं से कहा करती थीं "अरी तू हम पर हंसवायेगी, तेरे सुसराल के लोग कहेंगे उस घर की स्त्रियां अच्छी नहीं थीं, अन्यथा लड़की को कुछ तो ढंग सिखा देतीं" और हम अनुभव से देखते हैं कि यह बातें हमारे सम्मुख आ रही हैं॥

भद्र हिन्दुओं में अब यह विचार उत्पन्न होता जाता है कि लड़कियों को गृह प्रबन्ध से अनभिज्ञ रखना उन पर और जाति पर अन्याय करना है। यह अभ्यास अनुचित नहीं प्रत्युत इसे स्त्री की प्रतिष्ठा समझना चाहिए, ईश्वर जाने कब कैसा समय आजाय।

सुन्दर हाथ।

तीन सुशील स्त्रियां अपने हाथों की सुन्दरता के लिए झगड़ रही थीं। एक तो नदीके किनारे प्रति क्षण अपना हाथ धोती रहती, दूसरी के हाथ में गुलाब था और तीसरी का बनफ़शा के फूल की सुगन्धि से सुगन्धित था।

एक निर्धन स्त्री उधरसे निकली। तीनों ने अपना प्रसंग उसे कह सुनाया। उसने कहा मैं भूखी हूं कुछ खाने को दो तब मैं इसका निर्णय करूंगी, तीनों ने अस्वीकार कर दिया।

थोड़ी दूर पर एक दयावान स्त्री बैठी हुई थी, उसने इस स्त्री को फल आदि भेंट किए और जब वह अपनी उदर पूर्ति कर चुकी इन स्त्रियों को सम्बोधन करके कहने लगी, लो अब अपना २ हाथ दिखाओ और मैं तुमको बताऊंगी किस का हाथ सचमुच अच्छा है।

तीनों स्त्रियों ने अपना २ हाथ दिखाया, देखने के पश्चात् उसने उत्तर दिया, जो हाथ सदा पानी में धोया जाता है अच्छा नहीं, जो हाथ गुलाब से शोभित है वह अच्छा नहीं जो बनफ़शा से सुगन्धित किया गया है, वह भी किसी काम का नहीं, सब से अच्छा वह हाथ है जिसने एक भूखे को भोजन खिलाया है।

तीनों स्त्रियें यह सुन कर विस्मित हो गईं क्योंकि वास्तव में उसकी बात न्याय युक्त थी।

Dulari Nak
(Beauty Queen)
Your own
with me
Roll 2

विवाह

विवाह भी संसार की और दशाओं की न्याईं सुख दुःख से मुक्त नहीं। मधु में कभी २ कड़वापन भी होता है, परन्तु मिठास अधिक रहती है। स्त्री पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है कि छोटी २ बातों पर इतना न बिगड़ जाया करें। वास्तव में स्त्रियें साधारणतः सुशील होती हैं, सौ में से ६५ ऐसी

मिलेंगी जो अपने सुख और आनन्द को पति और सन्तान के ऊपर हर समय न्योछावर करने को उद्यत रहती हैं। वह सब प्रकार के दुःखों को संकट के समय सह लेती हैं, परन्तु कहां ? जहां गाढ़ प्रेम होता है। माता रोगी बच्चे के सिरहाने रात दिन बैठी रहती है, चाहे उस को कष्ट हो, सिर दर्द हो, किन्तु उफ तक नहीं करती। पति की सेवा में तन मन से लगी रहती है और जब कभी किञ्चित् अपराध उस से हो जाता है तब भी उसमें किसी निकट सम्बन्धी अथवा अपनी सन्तान के यशका विचार उनके सन्मुख रहता है, और यह हर प्रकार क्षमा के योग्य है। यदि पुरुष इस प्रेम और सहानुभूति का बीसवां भाग भी दर्शाने को तैयार रहें तो घर में कभी शोक और दुःख का लेश भी न हो। परन्तु हमारी असभ्यता और दुराचार हमें इस योग्य नहीं बनने देते, कि हम गृहस्थाश्रम के सुखों को भली प्रकार भोग सकें।

फिर भी हम अपने निज के अनुभव से कह सकते हैं, कि अकेले रहने से विवाह का सम्बन्ध सहस्र गुणा अच्छा है। और मनुष्य की अध्यात्मिक उन्नति में भी कोई विघ्न नहीं पड़ता।

एक युवा स्त्री ने अपने पति को पठित बना दिया।

जब हम कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में शिक्षा पा रहे थे, एक और लड़का हम से दो तीन श्रेणी ऊपर था, इस की आयु अधिक थी। हंसी २ में हम उससे पूछने लगे क्यों भाई तुम्हारी आयु तो अब बहुत होगई है, क्या कारण है कि तुम को अब पढ़ने की ओर रुचि हुई है, उसने पहिले तो बताने में संकोच किया फिर कहने लगा यह प्रश्न न करो, इससे मुझ को दुःख होता है, मैंने कहा—"भाई अवश्य बताओ क्या कारण है?" वह एक प्रकार से हमारा मित्र बन गया था। कहने लगा। सुनो! बाल्यवस्था में मैं अपने माता-पिता का लाडला था, पढ़ने लिखने से जी चुराता था, माता को कृपालु देखकर पिता की आज्ञा न मानता था, जिस से मूर्ख रह गया। १७ वें वर्ष मेरा विवाह हुआ, मेरी स्त्री सुशिक्षिता थी उसे मेरे अशिक्षित होने के कारण बड़ा दुःख हुआ और मुझे भी बहुत लज्जा आई। इसलिये मैंने उसी दिन से पढ़ना आरम्भ कर दिया और अब तक पढ़ रहा हूं।

यह एक सच्ची घटना है। इस से यह बात समझ में आ सकता है कि यदि स्त्री चाहे तो अपने पति वा सन्तान को सुगमता से अच्छे मार्ग पर ला सकती है। जो जाति की सुधार करना चाहते हैं, उन को सब से पहिले स्त्रियों की शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिये।

शिवव्रतलाल

I am beautiful girl
So make me your wife,
as soon as possible
I would go to Princip



Kamla Kak

Roll No
S.P.C

राजस्थान की वीर रानियां।

१—वीरमति ।

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वांति सलिल गुरु चरण हैं, चात्रिक तुलसीदास॥१॥
बिना विचार का खेल है, झूठा जगत् पसार।
जिन विचार पति ना लखा, बूड़े काली धार ॥२॥
तुलसी कमल जलमें बसै, रवि शशि बसे आकाश।
जो जाके मन में बसै, तो ताही के पास ॥३॥

धारा नगर के राजा उदयादित्य के दो रानियां थीं। एक सोलंकी और दूसरी बघेलनी। बघेलनी बड़ी और सोलंकी छोटी थी। और जैसा कि सर्वदा हुआ करता है छोटी रानी हर समय निरादर होता रहा। परमात्मा

का प्रभाव राजा पर अधिक था और वह रानी के वश में इतना हो गया था कि उस की आज्ञा बिना एक पग भी नहीं धर सकता था। इन रानियों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। सोलंकी का पुत्र जगदेव बड़ा था, बघेलनी के पुत्र का नाम रनधूवल था। इन दोनों में जगदेव बड़ा होनहार, धीर, गंभीर और पुरुषार्थी था। उस का विवाह टोंकटोडा की राजकन्या वीरमति से हुआ था जिस की कथा हम यहां वर्णन किया चाहते हैं।

दैव संयोग से एक दिन राजा उदयादित्य ने बड़े पुत्र से प्रसन्न हो उसे पारितोषिक में घोड़ा, जोड़ा, ढाल, तलवार और एक हीरे की मूठ की कटार दी। राजा के इस व्यवहार से न केवल जगदेव प्रसन्न हुआ किन्तु धारानगर के सब वासी सुखी हुए। उन को विश्वास हो गया कि शुभ आचरण वाले जगदेव के अधिकार को कोई न बिगाड़ सकेगा। किन्तु यह संसार विचित्र है, इस के काम निराले हैं, किसी ने जाकर बघेलनी को सूचना दी, कि आज राजा ने जगदेव को अपना प्यारा बना लिया और अपनी विशेष २ वस्तुएं उसको पारितोषिक में दी हैं, जो बड़ी अमूल्य हैं। रानी के हृदय में द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसी समय राजा के पास पहुंची और कहने लगी—"क्या आप जगदेव को राज्य देना चाहते हो?" भलाई इसी में है कि सब वस्तुएं अभी लौटा ली जावें और मेरे पुत्र को दी जावें, नहीं तो अभी से प्रजा का पक्ष जगदेव के साथ हो जावेगा और

राजा ने बहुत विचार किया और रानी को समझाया कि "ऐसा व्यवहार के करने से बड़ा अपमान होता है फिर राजा का कोई विश्वास नहीं करता" परन्तु रानी कब मानने वाली थी, उस ने ऐसा छल और कपट का जाल तान दिया, कि राजा को उस की बात माननी ही पड़ी। उसने बड़े पुत्र को बुला भेजा और कहा-"पुत्र! मैंने जो कुछ आज तुझ को पारितोषिक में दिया है, यदि तुम मेरी भलाई चाहते हो, तो उन्हें लौटा दो, तुम क्षत्रिय पुत्र हो, पिता के साथ हठ करना ठीक नहीं" जगदेव समझदार था, उस की अवस्था १५ वा १६ वर्ष के लग भग थी। वह जान गया कि किस कारण उस से पारितोषिक वापिस लिया जा रहा है, तलवार और कटार दोनों कमर से बंधी हुई थीं। उस ने उसी समय उन को निकाल करके श्रद्धा पूर्वक पिता के चरणों पर रख दिया। "पिता जी! यह लीजिये यह आप ही की वस्तु है, मुझे हठ क्यों हो? मैं कभी नहीं चाहता कि आपके सुख और आनन्द में विघ्न डालूं, न मैं कभी दुःख का कारण बनना अच्छा समझता हूं" पिता को प्रणाम करके वह चला आया, और राजा का पारितोषिक घोड़े समेत सब का सब लौटा दिया। परन्तु वह मनुष्य था और फिर राजपुत्र, विचारने लगा कि माता पिता की आज्ञा मानना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु अपमान पूर्वक जाना क्षत्रिय नियम के विरुद्ध है, वह जीवन ही नहीं जिसका हर समय निरादर होता रहे। परमात्मा ने मुझे हाथ पांव दिये

है। प्राचीन राजाओं के संस्कार भी मुझे प्राप्त है, क्यों न दूसरे राज्य में चल कर अपनी जीविका की चिन्ता करूं। एक क्षण भर भी मेरे लिये यहां अपमान पूर्वक रहना ठीक नहीं। वह हंसता हुआ माता के पास आया, माता ने समझा कि पिता की कृपा से उस को प्रसन्नता हुई है। वह कहने लगी "क्यों जगदेव! आज कैसे हंस रहे हो?" पुत्र ने उत्तर दिया "माता तुम्हारी आज्ञा लेने आया हूं"।

पान पदार्थ सुघड़ नर, तौले बिना विकाहिं।
ज्यों२ निज घर परिहरै, त्यों२ मोल बढ़ाहिं ॥१॥
सिंहों के लहडे नहीं, चन्दों के नहिं ढेर।
लालों की नहीं बोरियां, बीर न होंहिं घनेर ॥२॥
रहिये पर्वत शिखर पर, कीजे तपोबन वास।
वहां न रहे वीर नर, जहां मान को नाश ॥३॥
घर में कबहूं ना मिलैं, नाम मान नौनिधि।
जबही जाय विदेश नर, पावै मान और सिद्धि॥४
युवा अवस्था जानिये, ज्यों तरवर की छांह।
साहस कर२ चतुर नर, संग्रह ऋद्धि कराहिं ॥५॥

अवसर बीते कुछ नहीं, सहे विपद् सन्ताप ।
समय व्यर्थ नहीं खोइये, कीजे साहस आप॥६॥
घर में अवगुण तीन हैं, सुन लीजै सब कोय ।
ऋण बढ़े साहस घटै, नाम मान नहिं होय ॥७॥

जगदेव कहने लगा "माता अब घर रहने में मेरी भलाई नहीं है, तू आज्ञा दे मैं परदेश जाकर चाकरी कर लूंगा और अपनी रोटी आप पैदा कर लूंगा" मां की ममता प्रबल होती है। उसने पुत्र को गले से चिपटा कर कहा "जो तू कहता है सच है, क्षत्री के बालक को अपमान पूर्वक रहना कदापि उचित नहीं। पर अभी तेरी आयु छोटी है, परदेश में कैसे अकेला रह सकेगा। मैं तेरे साथ चलती, परन्तु पति को छोड़ना स्त्री के लिए उचित नहीं है, मुझे केवल तेरी अल्पायु के कारण भय लगता है। जगदेव ने उत्तर दिया "माता ईश्वर पर भरोसा रक्खो, जो बालक के उत्पन्न होने से पहले माता के स्थनों में दूध पैदा कर देता है, वही मेरी रक्षा करेगा, इसकी मुझको कुछ भी चिन्ता नहीं" माता ने कहा "अच्छा! जो तुझ को भला प्रतीत हो वह कर, मैं रोक कर तेरे जीवन को दुःखमय बनाना नहीं चाहती"।

माता की बात सुन कर पुत्र ने पीठ से तरकश, कंधे से धनुष और कमर से तलवार बांधी और स्वर्ण मुद्राओं का एक

तोड़ा साथ ले लिया और माता के चरण छू कर अपने भाग्य पर भरोसा करके घोड़े पर सवार हुआ और अकेला परदेश की ओर चल निकला। उस का मुख टोंकटोडा की ओर था, जब वह उस राज्य में पहुंचा अपना बुरा समय जान कर किसी पर अपने आप को जाहिर करना अच्छा नहीं समझा, नगर के बाहर एक बड़ी सुन्दर वाटिका थी। वह उस के भीतर चला गया, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के दिन थे, कुछ धूप थी और कुछ छाया थी,वह एक वृक्ष के तले घोड़े का ज़ीनपोश बिछा कर लेट रहा, उसे नींद आगई और फिर उसको अपनी सुध न रही।

दैव संयोग अथवा उसके भाग्य से वीरमति उस की भार्य्या अपनी सहेलियों समेत वाटिका में सैर करने को आई थी, विवाह हुए चार वर्ष व्यतीत हुए थे। क्योंकि अवस्था दोनों की छोटी थी इसलिए अब तक उनको एक दूसरे से परस्पर मिलाप का समय नहीं मिला था, युवती के खेल कूद और बाल्यावस्था के दिन थे, वह वाटिका में इधर उधर घूम रही थी, साथ की सहेलियां वर्षा ऋतु के गीत गा रही थीं।

इतने में एक सहेली उस ओर आ निकली जिधर राज-कुमार सोता था, उसी समय कुछ आकाश से बून्दें भी पड़ने लगी थीं, किन्तु सोने वाला ऐसी गहरी निद्रा में था कि उसे अपनी देह की भी सुध नहीं थी, सहेली उस के पास आई। अन्य पुरुष का राज वाटिका में चला आना आश्चर्य की

बात थी, वह ध्यान पूर्वक उस के मुख को देखने लगी, फिर घोड़े और उस के साज को देखा, वह देर तक विचारती रही कि यह कौन युवा पुरुष है, इसी समय उस के होठों पर मुस्कराहट के चिन्ह मालूम हुए और दौड़ कर वह वीरमति के पास जाकर ठट्ठा मार कर कहने लगीः—

"बाई जी ! तुम्हारा पति तुम को लेने आया है, अच्छा सजीला और बांका जवान है" वीरमति क्रोध से कहने लगी, "चल तैंने मेरी चिड़ निकाली है जब देखो तब ऐसे ही बातें करती रहती है" उसने कहा "नहीं मैं इस समय हंसी नहीं करती हूं चल तुझ को दिखादूं वह सो रहे हैं" भोली भाली लड़की उसकी बात में आकर चमेली की लता की आड़ में उस को देखने लगी, उस समय जगदेव जाग उठा था और बैठा हुआ कुछ विचार रहा था वीरमति उलटे पांव चली गई और कहने लगी "अरे सचमुच यह कहां से आगये" उस को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

सहेली साहस कर राजकुमार के पास पहुंची और पूछने लगी " महाराज ! आप का शुभ आगमन हम सब के लिये धन्य है। आप अकेले आये ? और लोग कहां हैं ?" राजकुमार बोला "मैं नौकरी की खोज में परदेश जा रहा हूं देशाटन की थकान के कारण आलस्य आ गया था। इसलिए यहां ठहर गया था। अब घोड़े को कस कर अपनी राह लूंगा" राजकुमार को यह नहीं मालूम था कि यह राज भवन से

सम्बन्ध रखती है। सहेली ने कहा "आप तनिक ठहरिये मैं आती हूं" यह कहकर वह वीरमति के पास आई। उसको साथ लेकर महल में गई और राजा रानी सबको जगदेव के आने की सूचना दी। जगदेव अपने घोड़े को मल कर चार जामा बांध रहा था कि उस का छोटा साला वीर्य्यसिंह आतिथि सत्कार की सामग्री लिये हुए आ पहुंचा, और उसे प्रणाम कर कहने लगा " आप कुछ दिन यहां वास कीजिए, जल्दी न कीजिए"। पिता जी ने कहा है कि पांच दिन का अवसर बहुत नहीं होता। फिर हमारा भी तो कुछ आप पर अधिकार है। राज कुमार ने कहा "मुझे हठ नहीं न मैं ज़िद करना चाहता हूं। मैं मार्ग में हूं किन्तु यदि तुम्हारी यही अभिलाषा है तो मैं ठहरने को प्रस्तुत हूं"।

फिर क्या था उसी समय बाटिका में तम्बू कनात आदि उस के विश्राम के लिए खड़े किये गये। आतिथ्य की सारी रीतियें हुई। सायंकाल के समय वह महल में जाकर अपनी सास और श्वसुर से मिला। टौंकटोडा के राजा ने उस से अकेले घर छोड़ने का कारण पूछा। उस ने सारी बातें कह सुनाई। लोग पहिले ही से जानते थे कि धारा नगर का राजा किस प्रकार छोटी रानी के वश में है। उस के विषय में तो किसी ने कुछ नहीं कहा किन्तु राजा ने जगदेव को आग्रह पूर्वक कहा कि यदि तुम यहां रहना चाहो तो यह तुम्हारा घर है। परन्तु कई कारणों से उस ने इसे स्वीकार न किया।

रात्रि के समय वीरमति अपने पति से मिली और कहने लगी–"आप परदेश जा रहे हो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी" उस ने कहा मैं इस समय अकेला और बिना साथी के हूं तुम को साथ नहीं ले चलता, क्योंकि तुम्हें दुःख होगा। उस ने उत्तर दिया—"इसी कारण मैं आप के साथ चलूंगी, जिस से तुम्हें परदेश में दुःख और क्लेश न हो"।

राज कुमार ने समझाया. तुम अबला हो, अभी तुम्हारी आयु केवल १४ वर्ष की है। संसार का व्यवहार नहीं जानती हो, परदेश में क्या हो जाय, कोई नहीं जानता। इसलिये मैं साथ न ले चलूंगा, वीरमति ने कहा, आपने भी एक ही कही जो मनुष्य अपनी स्त्री को साथ नहीं रखना चाहता। उस को विवाह करने का अधिकार ही क्या था ? मुझ में इतनी बुद्धि है कि मैं आप के दुःख व सुख को समझती हूं। मैं भी तो क्षत्रानी हूं अब मैं तुम्हारा संग कभी न छोड़ूंगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाये, और दुःख सुख में बराबर संग रहूंगी"।

सत्कार आदि में इस प्रकार पांच दिन व्यतीत हो गए। छठवें दिन राजकुमार वीर्य्यसिंह ने तीन सौ घोड़े सवारों सहित उसका साथ करना चाहा। जगदेव ने कहा–"मैं इस समय निर्धन मनुष्य हूं मैं किसी को भी साथ न लूंगा केवल इतना सहायता तुम करो कि पाटन देश का सीधा मार्ग बता दो जिससे मैं वहां शीघ्र पहुंच जाऊं" वीर्य्यसिंह कहने लगा–"यहां से दो रास्ते हैं। एक सीधा किन्तु भयानक है। इके दुके

मनुष्य उधर से नहीं आते। मार्ग में सिंह इत्यादि मिलते हैं, दूसरा मार्ग भय रहित है। किन्तु अधिक दिनों में पाटन पहुंचना पड़ता है। जगदेव ने कहा–"मैं उसी मार्ग से जाऊंगा, जिससे शीघ्र पाटन पहुंच सकूं"। यह कह कर वह घोड़े पर सवार हुआ वीरमति भी संग हुई क्योंकि वह भी हठीली और ज़िद्दी थी, माता पिता अथवा और किसी का कहना नहीं माना। वीर्य्यसिंह कुछ दूर मील दो मील तक पहुंचा कर निदान उन्हें मार्ग में छोड़ घोड़े इत्यादि सब वापिस ले आया।

जगदेव को वीरमति ने बहुत कुछ समझाया कि निकट राह से चलना ठीक नहीं, परन्तु उस ने नहीं माना, वीरमति अपने पति की निर्भयता देख कर प्रसन्न हुई–"कुंवर जी! धन्य है तुम्हारी माता जिसकी कोख से तुम जैसे वीर पुत्र पैदा हुए। चलो मैं भी सिंहों का भय नहीं करती। परन्तु एक बात का ध्यान रक्खो तुम अपने दाहिनी ओर की घास और झाड़ियों को देखते चलो मैं बाईं ओर से सावधान रहूंगी और तनिक भी घास के हिलने की सूचना देती रहूंगी"।

इस प्रकार दोनों ने भयानक मार्ग स्वीकार किया। जब रात्रि आती यह वन के वृक्ष काटकर चकमक से आग जला लेते। भयानक जीव जन्तु आग के भय से निकट नहीं आते थे मार्ग में उनका आहार मृग और पाढे का मांस था। कई दिन इस प्रकार व्यतीत हुए। एक दिन मार्ग में एक सिंह से सामना हुआ। जगदेव ने उसे ललकारा, सिंह फलांग मारता

हुआ उस पर आ गिरा, किन्तु जगदेव के सामने से संसनाते हुए तीर ने सिंह की आंख में घर कर लिया और दूसरे तीर ने उस को सदैव के लिए पृथ्वी पर सुला दिया। निकट ही शेरनी बैठी हुई थी। अपने पति की अवस्था देखकर वीर-मति के ऊपर आई वह भी सावधान थी उसकी धनुष के तीर ने शेरनी को वहीं गिरा दिया। और उसने तड़फ तड़फ कर जान दी, इससे पति पत्नि दोनों प्रसन्न हुए।

वीरमति हंस कर कहने लगी—"प्राणपति ! इस प्रकार के शिकार से कैसा आनन्द प्राप्त होता है"।

शेर और शेरनी को मारकर दोनों आगे बढ़े। एक अपूर्व और अति मनोहर सरोवर दृष्टिगोचर हुआ, घोड़ों को वृक्षों से बांध कर वह विश्राम करने लगे और अग्नि प्रज्वलित कर सरोवर के किनारे बैठे। इधर वीर्य्यसिंह अपने पिता के पास पहुंचा और जब उस ने सुनाया कि जगदेव अकेला भयानक मार्ग से गया है, तो राजा का हृदय भय से कांप उठा। उसने कहा—"तूने बड़ी भूल की, क्यों उधर से जाने दिया, शोक ! जामाता और कन्या दोनों इस समय शेर के मुख में होंगे"। वह अत्यन्त व्याकुल हो गया, रानियों के मन में भी भय छा गया। राजा ने उसी समय वीर्य्यसिंह को तीन सौ सवार देकर उसी ओर फिर रवाना किया कि जगदेव की सूचना ले आवें, वह उसके पांव के चिन्हों को देखते हुए चले। राह में रुधिर की बूंदों पर उसकी दृष्टि पड़ी, वीर्य्यसिंह डरा।

"कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जगदेव अथवा वीरमति में से कोई मारा गया" परन्तु अभी दो तीन गज़ ही आगे बढ़े होंगे कि एक ओर शेर और दूसरी ओर शेरनी मरे पड़े दिखाई दिये, जान में जान आई, आगे बढ़कर देखते क्या हैं कि सरोवर के किनारे दो पथिक बैठे विश्राम कर रहे हैं। वह उठ और प्रेम से मिले वीर्य्यसिंह ने कहा—"जगदेव! तुम क्षत्रिपुत्र हो। इन चाण्डालों ने सैंकड़ों को मार खाया था, किसी की मारने का साहस न पड़ता था"। जगदेव ने मुसकराकर कहा—"देखो इन शेरों के मारने वाली वह वास्तविक क्षत्रानी है यदि वह मेरे संग न होती तो मेरी आंखों को शेर का पता भी नहीं लगता शेर से शेरनी अधिक भयानक होती है"। वीरमति ने शेरनी का शिकार किया है। वीर्य्यसिंह ने अपनी बहिन की ओर आश्चर्य और प्रेम से देखा। वीर्य्यसिंह उन का समचार लेकर कुछ देर पश्चात् लौट गया।

पति पत्नि दोनों पाटन नगर के निकट पहुंचे, घोड़ों से ऊतर कर उन्हें वृक्षों से बांध दिया, और राजकुमार वीरमति को समझा बुझा कर नगर में आया कि अपने निवास के निमित्त कोई मकान किराया पर ले। जिस स्थान पर उनके घोड़े बांधे थे वहां एक सरोवर था, जिसको सहस्रालिंग सरोवर कहते हैं। जगदेव अभी नगर में मकान की खोज में है, वीरमति चारजामां पर बैठी हुई पति की राह देख रही है। दुर्भाग्य से उस समय पाटन देश में जामवती नाम की एक राजवैश्या

रहा करती थी, जिस के कपट जालमें नगर के बहुत से धन वानों के पुत्र फंसे थे, उस की एक दासी उधर आ निकली। वीरमति के सौन्दर्य्य को देख उस के मुख में पानी भर आया निकट आकर उसने पूछा " बाई ! तू कौन है, इन घोड़ों के सवार कौन हैं और कहां गये हैं, वीरमति ने जो अभी युवा थी, और सँसारिक व्यवहार नहीं जानती थी, भोलेपन से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। लौंडी प्रसन्न हुई, यह भोलाभाला शिकार कहां जा सकता है, वह वेश्या के पास भागी गई और वीरमति का हाल कह सुनाया। वेश्या अपनी बीस पचीस सुन्दर लौंडियों को भूषण इत्यादि पहिना कर और आप भी अच्छे वस्त्र धारण करके रथ पर सवार हुई और कपट से उसे घेर लाना चाहा। रथ के साथ कई युवा पुरुष विशेष प्रकार के वस्त्र पहिने हुए थे। वह बड़े मान-पूर्वक सभ्य रानियों की न्याईं वहां पहुंची। सरोवर के किनारे कनात खिच गई और जामवती उस लौंडी को लिये हुए वीरमति के पास पहुंच कर कहने लगी। " बहू ! उठो मैं यहां की रानी और जगदेव की फूफी और सम्बन्ध में तेरी फूफी सास लगती हूं। उठो मुझसे मिलो, मैंने अभी तुम्हारे आने का समाचार सुना इसलिए रथ तैयार करके लेने को आई हूं। मैं जब गई थी, जगदेव का विवाह टौंकटोडा में हुआ था, मैं केवल रनधूवल से मिल सकी थी, जगदेव मेरा भतीजा कहां है ? तुम एक बड़े कुल की कन्या हो। चलो मेरे साथ महल में चलो मैं तुम को देख

कर बड़ी प्रसन्न हुई हूं, वीरमति जानती थी कि सिद्धराज के जगदेव की फूफी व्याही है । वह चित्त में बहुत प्रसन्न हुई, परन्तु कहने लगी कि "मैं कैसे चलूं तुम्हारा भतीजा आता होगा। मुझको न देख कर अत्यन्त दुःखी होगा। जामवती बोली "घबराने की कोई बात नहीं मेरे सेवक यहां ठहरेंगे और उस को साथ ले आवेंगे"।

यह कह कर बड़े आदर भाव के साथ उसे अपने घर ले गई। वैश्या का मकान भी महल से कम नहीं था। उस के घर के वैभव को देख कर वीरमति को आश्चर्य्य हुआ, जामवती ने इस प्रकार पहिले ही से प्रबन्ध कर रखा था, जिस में उसे संदेह न हो, सायंकाल समय भोजन तैयार हुआ। परन्तु वीरमति को खाने में आपत्ति थी। क्योंकि जब तक पति न खाले तब तक सुशील स्त्रियें भोजन नहीं करतीं, उस ने बार २ पूछा "फूफी जी! तुम्हारा भतीजा क्यों नहीं आया मैं उन के खाने के बिना कुछ न खाऊंगी" जामवती के संकेत से उस की लौंडी इधर उधर गई और फिर कर कहने लगी कि जगदेव की तो अकस्मात् राजा से भेंट हो गई और वह राजा के पास बैठा हुआ वहां ही भोजन कर रहा है। मैंने कहा "महाराज! जगदेव की फूफी जी उसे बुला रही हैं। राजा बोले "क्या जगदेव हमारा सम्बन्धी नहीं है, जाकर कह दो अभी बात चीत करते हैं। भोजन करके आवेंगे, घबराने की क्या बात है। तुम वहां वीरमति के आराम का ध्यान रक्खो जगदेव को हमारे यहां कुछ कष्ट न होगा।

लौंडी ने यह बातें ऐसे कही थीं कि वीरमति को भी सन्देह नहीं हुआ उसने फिर बिना कहे थोड़ा सा भोजन कर लिया और हंसी ठठ्ठा की बात होने लगीं।

रात्रि के नौ दस बज गये किन्तु जगदेव नहीं आया, वीरमति को दुःख अनुभव होने लगा। जामवती ने समझौता देकर कहा—"पुत्री क्यों तू किसी अन्य के घर में आई है क्यों डरती है। मेरा भतीजा आता होगा यदि निद्रा आती है तो ऊपर के कमरे में जाकर सो जा"।

ऊपर सोने के हेतु एक सुन्दर पलंग बिछा दिया गया था। और हर प्रकार की चीज़ें सजावट व आनन्द के हेतु धरी थीं। वीरमति खाट पर लेट रही।

जामवती का परम मित्र नगर के कोतवाल का पुत्र था। दस बजे वह आया, जामवती ने अपने नये शिकार का हाल सुना कर उसे ऊपर जाने को कहा। उस लड़के का नाम लाल कुंवर था। वह मदान्ध हुआ २ था। लौंडी ने जा कर द्वार को खटखटाया। "वहू द्वार खोलदे राजकुमार आ रहा है," द्वार खुला और लाल कुंवर घर के भीतर घुस गया और द्वार पीछे से बन्द कर दिया गया। वीरमति लाल कुंवर को देखकर धक सी रह गई और समझा कि धोखा दिया गया। लाल कुंवर ने हाथ बढ़ाया। वीरमति के पास कोई शस्त्र नहीं था, उस ने उसे हाथ से धक्का दे दिया, लाल कुंवर मदान्ध था नीचे गिर पड़ा और फिर उसी समय शेरनी की तरह झपट कर वीरमति ने उस

की कमर से कटार खींच ली और उसी से उसे मार डाला। भीतर से द्वार बंद कर दिए। वह दिल में डरी हुई थी किन्तु वह प्रसन्न भी बहुत थी कि ईश्वर की दया से उसके पतिव्रत धर्म का भङ्ग नहीं हुआ। वह विचारों में निमग्न मृतक शरीर के पास बैठी रही, इतने में आधी रात हो गई, पहरे वाले हांक देने लगे। उसने विचारा कि इस चाण्डाल स्त्री ने मुझे धोखा दिया है मुझे भी कुछ करना चाहिए। उसने कुंवर की लाश उठा कर खिड़की में से बाहर फेंक दी। उसकी आवाज़ सुन कर चौकीदार चारों ओर से दौड़ पड़े, उन्होंने समझा कोई चोर मकान पर चोरी करने चढ़ा था पांव फिसल गया और भूमि पर गिर कर मर गया। वह लाश उठा कर कोतवाली में लाए। कोतवाल और उस के साथियों की दृष्टि उस पर पड़ी, सब को आश्चर्य हुआ। उसी समय चारों ओर मनुष्य दौड़ाए। लोगों ने कहा वह जामवती के घर गया था, वह सब जामवती के यहां आए उसने मान लिया कि हां वह आया हुआ है और एक स्त्री के पास ऊपर सोया हुआ है। मनुष्योंने द्वार खटखटाया किन्तु उत्तर नहीं मिला। अन्त में जब जामवती आकर कहने लगी द्वार खोलदो, वीरमति ने उत्तर दिया "चाण्डाला! निर्लज्ज स्त्री तूने एक राजपूत स्त्री के संग ऐसा कपट किया और उसके पतिव्रत का भङ्ग करना चाहा था, तू नहीं जानती कि मैं वीरमति हूं। तुझे तेरे परिवार सहित नष्ट कर दूंगी और तुझ को भी वहां ही भेजूंगी, जहां वह निर्लज्ज कोतवाल का पुत्र गया है॥

ऐसा सुनते ही जामवती की बुद्धि ठिकाने आगई, उसने समझा कि कोतवाल का पुत्र मारा गया। अन्य सब को भी विदित हो गया कि इस चाण्डालिन ने किसी ठकुरानी को फांसा था, जिसका फल यह हुआ है, कि कोतवाल का पुत्र मारा गया है।

वाद विवाद करते प्रातःकाल होगया, वीरमति ने द्वार नहीं खोला। एक खिड़की अवढ़ सी थी। उस में से एक मनुष्य ने भीतर जाने का निश्चय किया, वीरमति की तलवार विद्युत की तरह चमकी और उसका सिर धड़ से पृथक् जा गिरा, दूसरे ने भी साहस किया उसकी भी यही दशा हुई। इस प्रकार पांच मनुष्य मारे गए। अब किसी को भीतर जाने का साहस न हुआ सब के हाथ पांव फूल गए।

इसकी सूचना सिद्धराज को दी गई। उसने कहला भेजा जब तक मैं न आलूं कुछ न करो और सब खड़े होकर वहां ही उस की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर जगदेव मकान की खोज में नगर में आया। एक घर किराया पर लिया, किन्तु लौटने पर वीरमति नहीं मिली, न घोड़े दिखाई दिए। आश्चर्य पूर्वक कहने लगा हे परमेश्वर यह क्या होगया! कौन उस को हर ले गया और देर तक उस की खोज में मारा २ फिरता रहा। राजा की घुड़साल के दारोग़ा की दृष्टि उस पर पड़ी! उस ने पास बुला कर पूछा तू कौन है? जगदेव बोला परदेशी हूं नौकरी की खोज में यहां आया हूं। उसने प्रसन्न होकर उसे अपने पास

नौकर रख लिया, और उसकी सहायता द्वारा उसे शीघ्र ही सिद्धराज से भेंट हुई। किन्तु वह दिल में बहुत दुखी था।

छिन बाढ़े छिन में घटे, छिन आधा छिनलेन।
दाता ने क्या सोचया; क्या चन्द्र को देन॥

उस को रात के समय नींद नहीं आई, बराबर करवट बदलता रहा। दारोग़ा घुड़सालने अपने घर से भोजन भिजवाया किन्तु उसने छूआ तक नहीं। ज्यों त्यों करके प्रातः हुई राजा ने सवारी के लिए घोड़ा मंगवाया जगदेव ने जा कर घोड़ा उपस्थित किया। सिद्धराज को उसका आचार व्यवहार अच्छा प्रतीत हुआ किन्तु यह समझकर कि हमारे ही सेवकों में से होगा उस से कोई बात नहीं पूछी।

राजा सिद्धराज थोड़े समय के पश्चात् जाम्मवती के घर चले और दारोग़ा और जगदेव दोनों घोड़ों पर सवार हो राजा के पीछे २ हो लिये।

सिद्धराज ने जब सुना कि किसी राजपूतनी के साथ धोखा किया गया है वह स्वयं द्वार के समीप आकर कहने लगा पुत्री! बता तो सही तू कौन है? तेरा पति कहां है? सास ससुर कहां रहते हैं? भयभीत मत हो। मैं यहां का राजा हूं। उसने भीतर से कहा महाराज! मैं वीरमति हूं राजा टोंकटोडा की पुत्री हूं धारा नगर के राजपुत्र की बहू और वीर्य्यसिंह की बहन हूं। राजा बोला तूने हमारे आदमियों का

वध क्यों किया है ? उसने उत्तर दिया इस स्त्री ने मुझसे यह कह कर कि मैं राजा की रानी और तेरी फूफी हूं मुझे धोखा दिया और यहां लाकर मेरे पतिव्रत धर्म्म को भङ्ग करने की युक्ति की। मरती क्या न करती बिना मरने मारने के और क्या उपाय रह गया था। जब तक शरीर में प्राण हैं कोई मुझे भ्रष्ट नहीं कर सक्ता, मेरा पति इस नगर में घर की खोज में गया है, जब तक वह न आएगा मैं द्वार न खोलूंगी आप उसको बुलाईये।

इतने में जगदेव ने आगे बढ़ कर कहा "प्रिये मैं आगया हूं द्वार खोल दे। मुझको अत्यन्त कष्ट हुआ है" । अभी यह शब्द कहने वालेके मुख से निकल ही होंगे कि द्वार खुल गया और वह राजपूतनी जो अब तक सिंहनी की न्याईं कठोर आत्मा बनी हुई थी, रोती हुई बाहर निकली और जगदेव के शरीर से लिपट गई और कहने लगी "हे प्राणनाथ! सचमुच यह घंटे अत्यन्त आपत्ति के थे"। उनका परस्पर प्रेम देखकर सिद्धराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और वीरमति से कहने लगा कि आज से तू मेरी धर्म्म की पुत्री है। चल अब हमारे राजमहल में आराम कर। राज भवन की दासियें उस को रथ पर बैठा लाईं और वहां बड़े आदर सन्मान पूर्वक रहने लगी। फिर तो वीरमति के पतिव्रत पालन की सारे नगर में धूम मच गई

सिद्धराज ने कोतवाल की सारी सम्पत्ति को राज्याधीन कर लिया तथा जामवती और उस की सब वेश्याओं के नाक कान कटवा कर अपने नगर से निकाल दिया। फिर

जगदेव से सब हाल पूछ कर उस को अपना निकट वर्ती बना लिया और एक मोतियों की माला पारितोषिक में दी जिसे जगदेव ने घुड़साल के दारोगा को दे दिया, क्योंकि वह उस की सहायता द्वारा ही दरबार का सेवक बना था। वह दिन इसी प्रकार हंसी व आनन्द से व्यतीत हुआ और रात को दोनों पति पत्नी निर्भयता पूर्वक सोये।

दूसरे दिन प्रातः को अभी रात कुछ शेष थी कि वीरमति उठी उस ने भोजन तय्यार करके जगदेव को जगाया। उस ने पूछा " तुम ने इतना शीघ्र मुझे क्यों जगाया " वह कहने लगी " मैंने तीन दिन से कुछ भोजन नहीं किया है और प्रातः ही राजा आपको बुलावेगा पता नहीं कि आप कब आओ, इस लिए मैंने यह भूल की है। फिर दोनों ने भोजन किया, अभी कुछ समय व्यतीत न होने पाया था कि राजा का सेवक बुलाने आया, जगदेव वहां चला गया और फिर उसे सारा दिन अपनी स्त्री के पास आने का समय नहीं मिला।

सिद्धराज ने जगदेव का बड़ा सन्मान किया, उसे अच्छा वेतन देकर सरदारों की पदवी प्रदान की और वह वहां आनन्द पूर्वक रहने लगा। वीरमति के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिन के नाम जगधोल और वीजधोल थे, सिद्धराज उन दोनों को बहुत प्यार किया करता था। उन दोनों में माता पिता की न्याई क्षत्रीपन कूट कूट कर भरा था।

जगदेव सिद्धराज का विश्वास-पात्र और सर्व अधिकारी था। सिद्धराज ने विचारा कि जगदेव की भक्ति की परीक्षा लेनी चाहिए। वह अन्ध विश्वास का समय था, मनुष्य दिखलावे वाले बहुत थे। राजा ने उस से लाभ उठाने का उपाय सोच निकाला। जगदेव राजा का आसन्न-परिचारक (बाडीगार्ड) था। भादों की रात जब पानी झम झम वर्ष रहा था, राजा ने किसी स्त्री की आवाज सुनी उस ने पहरे वालों को बुलाया। और तो कोई नहीं था, केवल जगदेव खड़ा था। राजा ने आज्ञा दी जावो देखो यह कौन रो रहा है। जगदेव गया थोड़ी दूर पर दो चार स्त्रियां रो रहीं थी। जगदेव ने पूछा क्या कारण है जिस से तुम रो रही हो, उन्होंने कहा सिद्धराज की अवस्था पूरी हो गई है। अब वह मर जायगा। यदि तुम अपनी स्त्री और पुत्री समेत उस के लिए उस यन्त्र में जो देवी के मंदिर के सामने बना है बैठ कर कट मरो तो वह बीस वर्ष और जी सकता है। जगदेव ने कहा यह कौन सी बड़ी बात है। चलो हम तैयार हैं, वह घर पर आया वीरमति से सारा वृत्तान्त कह सुनाया, उस ने भी स्वीकार कर लिया। दोनों पुत्र कहने लगे "पिता जी स्वामी के लिए प्राण देना क्षत्री का धर्म्म है, जब माता पिता अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार हैं, तो हम कैसे पीछे रह सकते हैं"। यह चारों विमर्श कर उस स्थान पर आये, जहां वह यन्त्र तैयार था, स्त्रियां वहां अब तक खड़ी

थीं। वीरमति और जगदेव ने दोनों पुत्रों को बीच में कर लिया और अपने गले प्रसन्न चित्त से उस यन्त्र पर धर दिए। और स्त्रियों से कहा योगिनियो! लो अपना कार्य करो।

सिद्धराज छिपा हुआ यह सब कुछ देख रहा था, उस ने स्वयम् आकर उन को उस यन्त्र से निकाला और लड़कों और जगदेव को छाती से लगा कर कहने लगा "वीर पुरुषो! तुम धन्य हो, तुम्हारी राज-भक्ति धन्य है तुम्हारे जैसे सच्चे और राज भक्त पुरुष कहां मिलते हैं। तुम्हारा जीवन अमूल्य है मैं कैसे उस को नाश होते देख सकता हूं। फिर उस ने वीरमति के साहस की भी बड़ी प्रशंसा की।

वीरमति ने शेष आयु जगदेव की सेवा में बिताई। उन का जीवन सचमुच एक पवित्र और आदेश जीवन था।

आर्य्य पुरुषो! ऐसे ही मनुष्य अपने देश और जाति की शोभा बन सकते हैं। क्या तुम भी इनके पवित्र जीवन से कुछ लाभ उठा सकोगे।

२—चञ्चल-कुमारी।

अपने कुल की याद कर, कहां है तेरो ठांव।
ऐसा अनुचित क्यों करै, कि डूबे कुल को नांव॥

आओ आज हम तुम्हें एक ऐसी वीर स्त्री का जीवन चरित्र सुनाते हैं, जिसको सुनकर आश्चर्य्य क्या तुम्हारे रोमांच हो उठे और तुम को अपने मन में लज्जित भी होना पड़े। जाति धर्म का अभिमान तुम में ऐसे गुण उत्पन्न करे कि जिस से तुम दुष्कर्मों से घृणा करने लग जावो और आत्म सम्मान तुम में मनुष्यत्व के गुण उत्पन्न कर दे।

यह किसी उपन्यास की कृत्रिम कथा नहीं न कपोल कल्पित है, यह एक ऐतिहासिक घटना है और इस कारण कोई आश्चर्य नहीं यदि आप इस से कोई उपयोगी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

चंचल-कुमारी जिस का हम वर्णन कर रहे हैं, रूपनगर के राजा विक्रमसिंह की कन्या थी, जैसा उस का नाम था, वैसे ही उसमें गुण थे। वह रूपवती तथा सुन्दर थी और धैर्य्य, साहस, पुरुषार्थ, चातुर्य आदि गुणों से सम्पन्न थी, वह स्वाभिमानिनी थी, और उस का पातिव्रत धर्म अचल

था। रूपनगर एक छोटी सी रियासत थी, सौ एक ग्राम राजा के अधिकार में थे। पर वह राजा किसी बड़े ऊंचे क्षत्री कुल का था। विक्रमासिंह यद्यपि ऐसा साहसी अथवा विचार-शील नहीं था, किन्तु पुराने क्षत्रियों के संस्कार और उनकी पवित्रता का प्रभाव उसके वंश से होता हुआ चचलकुमारी के रूप में स्थूल शरीर की अवस्था को प्राप्त हुआ था। चंचल एक उच्च राजपूतनी थी, वह स्थूल शरीर में दिखाई देती थी, किन्तु सच तो यह है कि वह आदर्श स्त्री थी। वह ऐसी निपुण और प्रवीण थी कि जिस का वर्णन कवियों के मास्तिष्क से विचार द्वारा ही हो सकता है अथवा एक चित्रकार अपनी अद्भुत लेखनी द्वारा कागज़ पर खींच कर दिखला सकता है। चंचल की किशोर अवस्था थी, अथवा बाल समय था, वह अपनी सहेलियों के साथ आनन्द का जीवन व्यतीत करती थी। किसी भी प्रकार का दुःख उसे न था, यहां तक कि वह यह भी नहीं जानती थी कि संसार में दुःख किस वस्तु का नाम है। वह हर प्रकार से प्रसन्न थी और माता पिता ने उस की प्रसन्नता का प्रत्येक उपाय कर रखा था, परन्तु आप जानते हैं।

दो रंगी ज़माने की मशहूर है।
कहीं साया है और कहीं नूर है॥

एक समय ऐसा आया, जिसने उसके सिर पर आपत्ति का पहाड़ गिरा दिया। परन्तु हम उसे आपत्ति नहीं कहेंगे

क्योंकि यदि ऐसा समय उस पर न आया होता, तो हम या हमारे पाठक गण अथवा अन्य पढ़े लिखे मनुष्य चंचल का नाम भी न सुनते। उस दुःख ने हम को एक विदुषी प्रशंसनीय माता, एक पवित्र स्त्री और सच्ची माननीय क्षत्रानी का जीवन चरित्र दिया, जो हमें सदैव स्मरण कराता रहेगा कि पहिले हिन्दू माताएं कैसी थीं। हिन्दू स्त्रियों का किस प्रकार का धर्म्म हुआ करता था, और स्वाभिमाननी व किसी के आगे सिर न झुकाने वाला क्षत्रानियों का आचार व्यवहार कैसा हुआ करता था।

एक दिन राजा के महल में कोई विसातिन आई जो कई प्रकार के सुन्दर और रंगीले चित्र बेच रही थी। चित्र अच्छे थे, हाथी दांत के तख्तों पर चित्रकार की लेखनी ने अद्भुत कारीगरी बनाई थी, महल की लड़कियों ने स्त्री को चारों ओर से घेर लिया। वह केवल चित्र ही नहीं देखतीं थीं किंतु स्वभाव अनुसार उस बुढ़िया के साथ हंसी ठठा करने लगीं। बुढ़िया घबरा गई, उसने कहा तुम मुझ को न सताओ यह चित्र मैं तुम्हारे लिये नहीं परन्तु राजकुमारी चंचलबाई के लिये लाई हूं। यह कह कर उसने उनको पिटारी में बन्द कर लिया। इतने में सब लड़कियां पाषाण की मूर्ति की न्याईं चुप हो गईं। विसातिन उनकी यह दशा देख चकित हुई क्योंकि उनकी जिह्वा बंद होने वाली नहीं थी। उसने फिर कर देखा तो एक तेजास्विनी नव युवा लड़की पीछे से आ रही थी उसके रोब में आकर लड़कियां सहम गईं और फिर किसी का बुढ़िया को छोड़ने का साहस न

हुआ। यह लड़की स्वयं एक मूर्त्ति थी नख से शिख तक उसके सब अंग सांचे में ढले हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था, कि पाषाण की सुन्दर मूर्त्ति हिल रही है। उसे देख कर चकित हो वह आदरार्थ उठ खड़ी हुई। यह लड़की चंचल कुमारी थी। उस ने आते ही कहा जो चित्र तुम मेरे दिखाने को लाई हो उनको दिखाओ। बुढ़िया बिसातिन ने अकबर, शाहजहां, जहांगीर, नूरजहां इत्यादिकों के चित्र दिखाये। चंचल बोली यह तो हम ने देख लिये, क्या तुम्हारे पास हिन्दुओं के चित्र नहीं हैं? उसने कहा तनिक शान्ति कीजिये मैं अभी देखती हूं और उसने एक बंडल से राजा मानसिंह, बीरबल, जगतसिंह इत्यादिकों के चित्र दिखाये। चंचल ने कहा यह हिन्दुओं के चित्र नहीं है यह तो बादशाह के नौकर हैं। बिसातिन ने तब राना प्रताप, राना अमरसिंह, राना जसवंतसिंह इत्यादिकों के चित्र निकाले। उनमें से चंचल ने प्रायः सब को पसंद करके मोल ले लिया, और जितना मूल्य उचित था दिया। उस स्त्री ने एक चित्र छिपा रखा था और नहीं दिखलाया था, चंचल को आश्चर्य हुआ कि यह चित्र तुमने क्यों नहीं दिखाया? स्त्री ने हाथ बांधकर कहाः-राजकुमारी यह चित्र तुम्हारे कामका नहीं है यह तुम्हारे शत्रु का चित्र है, चंचल बोली वह किस का चित्र है? बिसातिन ने कहा यह महाराना राजसिंह का चित्र है। चंचल मुसकराई, राजसिंह शूरवीर और साहसी राजपूत है, जिन में साहस होता है वह किसी स्त्री के शत्रु नहीं बनते। लाओ! यह चित्र भी मैं मोल लूंगी, क्योंकि वह ऐसे वंश के राजा हैं। जिस को अपने हिन्दूपन का सदा ही से अभिमान है।

वास्तव में किसी कारण उदयपुर के रानाओं व रूपनगर के राजाओं में चिरकाल से कुछ अनबन चली आती थी, इसी लिए विसातिन ने राजसिंह को चंचल का शत्रु कहा था।

विसातिन के हाथ से चित्र लेकर चंचल उसको ध्यान पूर्वक देखने लगी, उस के संगठित अंग प्रत्यंग को देख कर बहुत प्रसन्न हुई, उसने दूसरी लड़कियों को दिखा कर कहा देखो यह एक असली हिन्दू का चित्र है, कितना अच्छा है, मुख से कैसा बांकपन वरसता है। उसने विसातिन से दाम पूछा। चंचल के मन की रुचि को देख कर उसने अन्य चित्रों से दुगना दाम मांगा। लड़कियां कहने लगीं, इसमें उसने बड़ा फल लाभ किया, विसातिन ने कहा यह तो उसकी शूरवीरता का न्योछावर भी नहीं है, तुम को अन्य शूरों के चित्र देखने की इच्छा हो तो मैं दिखलाऊं। यह कह कर उसने औरंगज़ेब का चित्र निकाला। जो उस समय का वड़ा बुद्धिमान बल पौरुषवान् राजेश्वर था, यह चित्र भी मोल लिया गया। किन्तु उस समय राजपूताना की क्षत्रानियां देहली के बादशाह के नाम से ही चिढ़ती थीं। उस चित्र को देख अल्पवयस्क लड़कियां हंस २ कर कहने लगीं इसकी गरदन झुकी है और हंसी २ में एक लड़की ने उस को भूमि पर गिरा कर अपने पांव से कुचल दिया। चंचल कुमारी को यह हंसी नहीं भाई और कहने लगी यह मनुष्यत्व का व्यवहार नहीं। विसातिन ने कहा यदि यह बात कहीं बादशाह तक पहुंच गई तो

रूपनगर के किले की एक २ ईंट तक का पता न लगेगा। पहिले तो चंचल कुमारी अब तक औरों को समझा रही थी परन्तु अब उस को विसातिन की बात पर क्रोध आगया, वह हंस कर बोली सब लड़कियां एक ओर से बारी २ इस चित्र पर लात मारो। राजपूताना में कदाचित लड़कों का पुतला बनाकर कभी २ लड़कियां उस पर नाचती थीं यही व्यवहार बादशाह के चित्र के साथ किया गया।

विसातिन का होश उड़ गया। वह डरी कहीं उसका मूल्य भी हाथ से न जाय, किन्तु चंचल ने मूल्य देकर उसे जाने का आदेश किया। यह हंसी का समय सच मुच एक लड़कपन की अज्ञानता थी, परन्तु चंचल को अन्य समय में उस ने कई लाभ पहुंचाये।

विसातिन चित्रादि बेचने परदेश जाया करती थी, कुछ समय पश्चात् वह लौट कर दिल्ली गई। क्योंकि वहां उसके पुत्र की दुकान थी, यहां से ही वह चित्र लेजाया करती थी, उसके महल्ले में एक स्त्री दरया बीबी नामक सुरमां बेचने राजभवन में जाया करती थी। विसातिन ने बात बात में रूप नगर की उस कहानी को कह सुनाया। इस भाव से नहीं कि यह सूचना बादशाह तक पहुंचे। किन्तु दरया बीबी ने उसे ज़ेबुलनसा नामी बादशाह की लड़की को सुनादी जो अपने समय की बड़ी चतुर थी, उसने उदयपुरी बेगम से इस विषय में बात चीत की। इस उदयपुरी बेगम का उदयपुर के रानाओं से कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु यह वास्तव में जाति

की ईसाई थी और दारा शिकोह के महल में थी। जब दारा-शिकोह का औरंगजेब ने घात किया तब इसे अपने अन्तःपुर में दाखिल कर लिया। वह अन्त समय तक उस की प्यारी थी। बादशाह हर कार्य में इससे परामर्श लिया करता था और जो पत्र अपने पुत्रों को लिखा करता था उन में कभी २ इस बेगम का हाल भी लिख दिया करता था। उदयपुरी बेगम ने सारा वृत्तान्त बादशाह को कह सुनाया वह और शपथ लेकर कहना कि मैं उस समय प्रसन्न हूंगी जब चंचलकुमारी यहां आकर मेरा पेचवान् ताजा करेगी, व चिलम भरने का काम देगी। उसी समय जेबुलनिसा ने भी कहा कि मैं उस अशिष्ट लड़की से पांव चाप्पी कराऊंगी।

उचित तो यह था कि औरंगजेब चुप होजाता किन्तु वह एक विशेष प्रकृति का मनुष्य था, उसने छल पूर्वक रूप नगर के राजा विक्रमसिंह को लिखा कि चंचल कुमारी को दिल्ली भेज दो मैं उस के साथ विवाह करूंगा। जिस समय यह समाचार रूप नगर वालों ने सुना वह उद्विग्न हो उठे अम्बर (जयपुर), जोधपुर के राजाओं ने अपनी लड़कियां मुगल बादशाह को देदी थीं, रूप नगर के राजा की क्या शक्ति थी कि वह इस आज्ञा को टाल सकता। वह कहने लगा क्या हर्ज है यदि लड़की शाही महल में जाती है बादशाहों का परस्पर में सम्बन्ध हुआ ही करता है और औरंगजेब तो इस समय सारे देश का राजेश्वर है। परन्तु चंचल कुमारी इस से सहमत न थी, जब उस से कहा गया तो उस ने

कहने वालों को सैकड़ों अपशब्द सुनाये।

शाही बेगमात के मुख से जो बात निकलती थी, सारे देश में फैल जाया करती थी। शाही महल में जोधपुर के राजवंश की एक लड़की व्याही थी। वह शाही बेगमों में सब से बड़ी और प्रतिष्ठित समझी जाती थी, किन्तु वह चित्त में सुखी नहीं थी। सन्धि पत्र के अनुसार उसको अपने धर्म्म सम्बन्धी कार्य्य करने की भी आज्ञा थी। औरंगजेब उसका मान भी करता था। परन्तु जब उस स्त्री ने सुना कि बादशाह ने किसी कारण चंचलकुमारी को बुलाना चाहा है तो उसको यह बात नहीं भाई। वह नहीं चाहती थी कि किसी और हिन्दू स्त्री का भी अपमान हो। उसने औरंगजेब के पास जाकर समझाया कि लड़कपन के कामों पर ध्यान देना बादशाह के लिए उचित नहीं है। परन्तु कौन सुनता था। निदान उसने अपनी विश्वस्त दासी को जिस का नाम देवी था जोधपुर भेजने के बहाने से रूपनगर रवाना किया उसने दासी द्वारा चंचलकुमारी को कहला भेजा "हिन्दुओं की नाक कट गई उन को अपने मान मर्य्यादा का विचार नहीं रहा। मैं जब से यहां आई हूं नित्य प्रति मृत्यु को आह्वान करती हूं। अब सुनने में आया है कि तू दिल्ली आ रही है। बादशाह ने तेरे हालात सुन लिए हैं। उदयपुरी बेगम ने शपथ खाई है कि तुझ से चिलम भरवाई जायगी। और जेबुलनिसा पांव चप्पी करावेगी। क्या तुम इस नीच कर्म करने को सहमत हो? मैं समझती हूं तू क्षत्रानी है और कदापि

इस को स्वीकार न करेगी। राजपूताने वाले निर्लज्ज हैं, उन से कर लिया जाता है, उनके राज्य में गोहत्या होती है, वह एक दूसरे के शत्रु तथा विद्वेषी हैं, उन से तुझ को कुछ सहायता न मिलेगी, हां उदयपुर वालों में अब तक हिन्दू जाति का अभिमान पाया जाता है। राना शूरवीर क्षत्री है, यदि तू उस की शरण लेगी तो इस में सन्देह नहीं कि वह तेरी सहायता करेगा अन्य किसी से किसी प्रकार की आशा नहीं है। तुम यह न समझना कि मैं द्वेष भाव से यह सलाह देती हूं। सम्भव है कि कोई तुझ से कहे कि जोधपुरी रानी चाहती है कि उसीका पुत्र राज-गद्दी पर बैठे इसलिए वह और किसी राजपूतनी को राज-भवन में नहीं आने देती। नहीं, इस का मुझे तनिक भी विचार नहीं, मैं पतित हो गई हूं, धर्म्म से पतित हो कर दुःख की अवस्था काट रही हूं, मुझे पूर्ण आशा है कि जब तक उदयपुरी बेगम तथा जेबुलनिसा की बातें मानी जाएंगी, इस प्रकार की आशा करनी व्यर्थ है।

देवी ने यह वृत्तान्त राजकुमारी से कह सुनाया, बादशाह की आज्ञा भी रूपनगर पहुंच गई थी। चंचलकुमारी उस दिन से शोक-सागर में डूब गई। उस की सहेली निर्मल बाई उस के निकट आई और कहन लगीः—

निर्मल—बाई जी! शोक करना व्यर्थ है, परमात्मा की ऐसी ही इच्छा है।

चंचल—सत्य है किसी का क्या दोष है, परन्तु चाहे

कुछ हो जाय, मैं मुगल की लौंडी बन कर नहीं रह सकती।

निर्मल—क्या कोई उपाय नहीं हो सकता, जिस से तुम दिल्ली न जा सको।

चंचल—उपाय तो सैंकड़ों हैं, किन्तु संकट यह है कि मेरे न मानने से पिता जी पर आपत्ति का पहाड़ गिर पड़ेगा, अभी शाही सेना पहुंच कर ईंट से ईंट बजा देगी।

निर्मल—पुनः क्या करोगी ?

चंचल—मैं विचार रही हूं या तो जाते समय मार्ग में विष खा के मरूंगी अथवा दिल्ली पहुंच कर बादशाह तथा उस की दुष्ट बेगम को दिखलाऊंगी कि राजपूतनी के छेड़ने का क्या फल होता है। हंसिनी कभी बगले की स्त्री नहीं हो सकती, न किसी स्त्री ने बन्दर के प्रेम को पसन्द किया है।

निर्मल—धन्य हो ! बाई जी धन्य हो ! परन्तु एक बात मैं भी कहती हूं, राना राजसिंह दीन उपकारक है, उस को क्यों न पत्र लिख दिया जाय, क्या आश्चर्य्य कि वह तेरी सहायता कर सके।

राजसिंह का नाम सुनना था कि चंचल का मुख लाल व उज्ज्वल हो गया, उस ने लज्जा से गर्दन नीची करली, फिर विचार पूर्वक ध्यान करने के पश्चात् कहने लगी कि राजस्थान भर में केवल यही एक वंश राजपूतों का है, जिस को अपने हिन्दूपन का अभिमान है। राजसिंह वीर और निर्भीक अवश्य है किन्तु औरंगजेब के सामने उस की क्या सामर्थ्य।

जोधपुर रानी ने भी अपनी लौंडी देवी से यही बात कहला भेजी है, परन्तु मैं विचार रही हूं, ऐसा न हो कि मेरे कारण रूपनगर तथा उदयपुर दोनों पर आपत्ति आवे, क्योंकि राजसिंह एक स्त्री के संदेश को सुनकर अवश्य जान जोखिम में पड़ेगा, जय अथवा विजय तो ईश्वर के हाथ है। किन्तु वह भी लड़ने से प्रतिषेध नहीं करेगा, दूसरी बात यह है, कि मेरा पिता कदापि उदयपुर की सहायता लेना स्वीकार न करेगा।

निर्मल—तूने भी अच्छी सोची, ऐसे समय पर मनुष्य क्या नहीं करता, कौन जाने तेरे सन्देश से रूपनगर व उदयपुर दोनों में एक भाव होजाय।

चंचल ने सिर उठा कर निर्मल की ओर ध्यान से देखा वह समझ गई कि निर्मल का क्या अभिप्राय है। उस के मुख पर एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न हो गई। किन्तु उस की बात का कुछ उत्तर न देकर कहने लगी जावो, कलम दवात लावो और अनन्त मिश्र को बुलालो।

निर्मल—कलम दवात लाई, अनन्त भी आकर उपस्थित हुआ। चंचल ने हाथ में लेखनी लेकर एक पत्र लिखा और अनन्त मिश्र के हाथ में मोतियों का हार तथा पत्र देकर समझाया कि जिस समय राना यह पत्र पढ़ने लगें, इस हार को उन के गले में डाल देना और कहना कि एक राजकन्या

ने सहायता के लिए बुलाया है, राज-कन्या का सतीत्व संकट में है, तुम्हारे बिना अन्य कोई राजपूत दिखाई नहीं देता, इस लिये यदि तुम उचित समझो तो उस को तुम अपनी शरण में लेलो।

अनन्त उसी समय उदयपुर की ओर चल दिया, अभी वह मार्ग में ही था, कि चार मनुष्य उसे मिले, अभाग्य वश वह उन से पूछने लगा कि उदयपुर यहां से कितनी दूर है? यह बनिये नहीं किन्तु डाकू थे। इन्होंने बनियों का भेष बना रक्खा था। उनके रहने का स्थान पहाड़ पर निकट ही था। उन्हों ने उत्तर दिया "उदयपुर यहां से थोड़ी दुर है, चलो हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे"।

पांचो मनुष्य साथ साथ चले, अभी यहां से दस पांच गज़ ही आगे बढ़ होंगे कि लुटेरों ने ब्राह्मण को पकड़ लिया और एक वृक्ष से बांध कर उस का धन तथा वस्तुएं सब छीन ली। परन्तु जिस समय वह अनन्त को लूट रहे थे, ईश्वर की कृपा से एक मनुष्य घोड़ा दौड़ाते हुए उधर से आ निकला, डाकू डर गये और झट पट एक कन्दरा में छिप रहे। सवार को ब्राह्मण पर दया आई पूछा "क्या बात है?" उस ने रोरो कर अपना वृत्तान्त कह सुनाया और जिधर लुटेरे गये थे, पता बता दिया। विशेष पूछने का समय नहीं रहा था, सवार झट पट कन्दरा के मुख की ओर चला। वह

बन्द था, परन्तु उस को हाथ से तोड़ डाला दूसरे क्षण में एक लुटेरे का सिर धड़ से पृथक जा पड़ा। राज-कुमारी का पत्र, मोतियों का हार और बहुत सी मोहरें उस के हाथ में थीं, सवार ने सब ले लीं, फिर दूसरे लुटेरे की ओर झपटा उस की ओर फिर तीसरे की यही दशा हुई, फिर सवार ने चौथे लुटेरे को मारने के लिये तलवार उठाई, उस ने दीनता से कहा "महाराजाधिराज! मेरी रक्षा कीजिये और शरण दीजिये आप की शरण में आता हूं", सवार ने उसी समय तलवार थाम ली लुटेरा बोला "महाराज मैं आपका दास हूं, आप के चरणों की सौगन्ध खाता हूं आज से कदापि यह काम न करूंगा, और जीते जी आप का दास बना रहूंगा और इस जीव रक्षा के हेतु मैं सदा आप की आज्ञा पालन करूंगा"। सवार ने पूछा "तू कौन है?" उत्तर में उसने कहा कि "मैं जाति का राजपूत हूं, आज तक लुटेरों का सरदार था, मेरा नाम मानिक लालसिंह है और आज से महाराना का दास बनूंगा"। सवार ने फिर पूछा "तूने मुझको कैसे पहिचान लिया"। मानिकलाल बोला "संसार में कौन मनुष्य है, जो राजसिंह का मुख देखकर उसे न पहिचान सके, सिंहों का मुख आप ही बता देता है"। राजसिंह ने कहा "जा तेरी जीव-रक्षा की गई, परन्तु तूने एक दीन ब्राह्मण को लूटा है, इस हेतु कुछ न कुछ दण्ड देना आवश्यक है। नहीं तो राज-

नीति के विरुद्ध होगा" मानिकलाल गिड़ गिड़ाने लगा "महाराज ऐसा सहल दण्ड दीजिये कि यह शरीर शेष आयु आप की सेवा के योग्य रह सके। मैंने अपना दण्ड आप भोग लिया, राजपूत के लिए दीनता के शब्द मुख से निकालना ही पर्य्याप्त है। राजसिंह ने मानिकलाल की ओर देखा फिर कमर से छुरी खींचकर उस के बायें हाथ की अंगुली काट दी। मानिकलाल को तनिक भी दुःख नहीं हुआ, राजसिंह आश्चर्य्य होकर कहने लगा "राजपूत! मैंने तुझे जो दण्ड देना था वह दे दिया, आज से तू उदययपुर की प्रजा की गणना में आ गया। वह राना के पांव छूकर वहां खड़ा हो गया।

राना पत्र तथा मोतियों का हार हाथ में लेकर नदी के किनारे आया और एक चटान पर बैठकर उस पत्र को पढ़ने लगा। पत्र उसी के नाम था, और उसे ध्यान के साथ पढ़ना आरम्भ किया उस का सारांश यह थाः—

राजन्! आप राजपूत कुल के दीपक हो, आप हिन्दुओं के माथे का मुकुट हो। आपको हिन्दुओं का सूर्य्य कहा जाता है और आप इस पदवी के योग्य भी हो। मैं एक दुखिया कन्या और अबला हूं। राजपूताना के मध्य प्रदेश रूपनगर में मेरा निवास स्थान है और राजा विक्रमसिंह की मैं पुत्री हूं। निस्संदेह रूपनगरका राज छोटा है। हमारी इतनी

मान बड़ाई नहीं है, परन्तु मैं फिर भी राजपूतनी हूं और राजपूताना की कन्या कहलाती हूं, इस कारण आप की दया की पात्री हूं। राजपूत कुल तिलक! मेरे मन्दभाग्य ने मुझे यह दिन दिखाया कि दिल्ली के बादशाह ने मेरे संग विवाह करने का सन्देशा पठाया। यदि किसी ने रक्षा न की तो दिल्ली के महल में मुझे बैठा दिया जायगा। राज सेना मेरे लेने के निमित्त आगई है, और मैं बड़े दुःख में हूं। राजपूत कुल के अभिमान के कारण मुझे मुसलमानी मत से घृणा है जैसे यह असम्भव है कि एक राजहंसनी बगुलेके साथ रह सके, इसी प्रकार राजपूतनी यवनके साथ नहीं रह सकती। मैं अपने भाग्य पर बैठी हूं, विष हलाहल सदा मेरी मुद्रिका में रहेगा। छोटे राज की कन्या की इस ढिठाई को लोग तिरस्कार की दृष्टि से देखेंगे और कहेंगे कि छोटा मुंह बड़ी बात। किन्तु कुछ ही क्यों न हो, मैंने मन में कुछ और ही ठान ली है। जोधपुर तथा अम्बर इत्यादि बड़े २ राजे महाराजे हिन्दूपन से पतित हो गये हैं, उन सब के माथे पर कलङ्क का टीका लग गया, उन की कन्यायें तुरकों के महल में दे दी गई हैं। अब केवल आप पर ही हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म्म तथा हिन्दूपन की लाज निर्भर है। कल सायंकाल के समय मेरा यहां से प्रस्थान होगा। मैं आप की आशा में रहूंगी, यदि आप

समय पर पहुंच गये तो अच्छा नहीं तो जो कुछ भाग्य में लिखा है सो होगा, मैं अन्त समय तक दिल्ली पहुंचते २ आपकी आशा रखूंगी। क्योंकि आप सा हिन्दू राजा एक हिन्दू कन्या की पुकार सुन कर निःसंदेह उस की रक्षा का भार अपने ऊपर लेगा, यह मुझे पूर्ण निश्चय है। आप महाराना प्रताप के पुत्र हो, जो जंगल में भूखा पड़ा रहा, जिस के लड़कों का वृक्षों की डालियों में पालन पोषन हुआ। परन्तु उसने धर्म को कदापि हाथ से नहीं दिया। आप में सांगा वंश का रुधिर है जो रणभूमि का सिंह कहलाता था आप बापा रावल के वंशज हो जिस की वीरता की कथायें प्रत्येक राजपूत की जिह्वा पर हैं। प्रताप के नाम लेने वाले वीर बापा रावल के पुत्र, सांगा जैसे कर्तव्य करने वाले पुरुष! एक अबला तुमको सन्देशा भेजती है, उसका धर्म सङ्कट में है, प्राण पर आ बनी है। बिना क्षत्री वीर के और कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। संसार क्षत्रियों से शून्य हो गया, कहीं क्षत्रीपन दिखाई नहीं देता, केवल प्रताप के वंश में ही वह विद्यमान् है। आप उस वंश के दीपक हो, एक अबला की पुकारको सुनो और उसको अपनी शरण दो। वह आप की दासी बनकर रहने की इच्छा करती है। यदि आप समझते हैं कि स्त्री रक्षा धर्म है, यदि आप के हृदय

में किसी शरणागत अबला की पुकार आपको उत्साहित कर सकती है, यदि आप उस के धर्म को बचाना उचित समझते हो तो शीघ्र इस ओर ध्यान कीजिए।

राजा ने पत्र को यहां तक पढ़ा यह स्वयं राज-कुमारी के हाथ का लेख था, पत्र पर कहीं कहीं आंसू टपके हुए थे; शेष समाचार निर्मलबाई का लिखा हुआ था, राना के दिल पर चोट सी लगी, क्षत्रानी की बात में बड़ा भारी प्रभाव था, उस ने थोड़े समय के पश्चात् शेष लेख को भी पढ़ना आरम्भ किया, जो इस प्रकार था:—

महाराज! दीन राजपूतनी की लाज भी राजपूत के हाथ है। क्षत्री कुल में कभी ऐसा समय नहीं हुआ जब किसी ने स्त्री की पुकार की अवज्ञा की हो। स्त्री जाति के लिये लाखों अथवा करोड़ों कटकर मर जाते हैं। उनको अमूल्य रत्न जान कर उन के हेतु सहस्रों उपाय करते हैं। आप ने द्रौपदी का चरित्र सुना होगा, रुक्मिनी की कथा पढ़ी होगी, भीष्म का चरित्र देखा होगा। मैं अपने आपको आपकी शरण में डालती हूं, मेरा हाथ पकड़ो मेरी लाज रक्खो, मोतियों का हार पुरस्कार रूप में आप को भेजती हूं, उसको स्वीकार करो। मैंने अनन्त मिश्र अपने वंश के पुरोहित को समझा दिया है, जब आप यह पत्र पढ़ते होंगे, वह उस को श्रीमान् के गले में

डाल देगा। इस से विशेष और क्या लिखूं यहां तैयारियां हो रही हैं, मैं मृत्यु तथा जीवन के बीच खड़ी हूं। मृत्यु को तो जब मैं चाहूं बुला सकती हूं, जीवन तुम्हारे हाथ है और पूरी आशा है कि यह पत्र पाकर तुम अवश्य जीवन दान दोगे।

राना पत्र को पढ़ शोक समुद्र में जा पड़ा, वह अनजान मनुष्य नहीं था, वह समझता था, राजपूतनी की सहायता करने में उदयपुर की क्या दशा होगी। किन्तु उस के आत्मा में वीरता कूट कूट कर भरी थी, बांकपन नेत्रों से टपकता था, उस ने मन में उसी समय निश्चय कर लिया कि इस समय किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये आंख उठाकर उस ने मानिकलाल से कहा "मानिकलाल इस समय तुम अपने घर जावो, घर का काम काज करके उदयपुर में आजाओ। इस पत्र के लेख को तुम ने सुन लिया है, किन्तु स्मरण रखना कानोकान किसी को पता न लगने पावे कि इस में क्या लिखा है। यह कहकर राना ने कुछ रुपये मानिकलाल को उठा कर देदिये।

अनन्त मिश्र की दशा कुछ न पूछिये, वह मन में घबरा गया था। क्या करने आया था, क्या होगया। जब वह विचार चिंता में ग्रसित था, चार और मनुष्य आते हुए दिखाई दिये वह डरा ऐसा न हो कि यह भी लुटेरे हों और मुझे जान से

मार दें। किन्तु यह लुटेरे नहीं थे, राना के सेवक थे और उस को खोज में आ रहे थे। राना उस समय शिकार के निमित्त उदयपुर से बाहर आया हुआ था। संयोग वश अपने मनुष्यों से पृथक् हो गया था और वह उस की खोज में चारों ओर घूम रहे थे।

उन सवारों में जो पीछे राना से आकर मिले, उस के दो पुत्र भी थे उनके अतिरिक्त और भी सम्बन्धी और उसके अपने भाई बन्धु थे, जो गणना में पचास थे। यह शिकार के निमित्त आये हुए थे। राना ने उन सब को सम्बोधन करके कहा भाइयो! हमारा भाग्य अब चक्र में आ गया है। हम एक युद्ध में जा रहे हैं, इस समय हमारे पास पचास से अधिक मनुष्य नहीं हैं, इसका फल क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस में कोई संदेह नहीं है कि जीत तथा हार दोनों समय में हम को कठिन से कठिन दुःखों का सामना करना पड़ेगा, जिन को दुःख का भय हो उन को उदयपुर जाने की इसी समय आज्ञा है

राना की बात सुन कर राजपूत सन्नाटे में आ गये, किसी को मालूम नहीं था, कि क्या हो रहा है, और क्या होने वाला है। उस के दोनों लड़के आगे बढ़े और उन्होंने जो कुछ कहा उसका भाव निम्नलिखित दोहे से प्रकट होगा, राज कुमारों के इस विचार को सुन कर दूसरे राजपूत उत्साहित हो उठे और कहने लगे:—

शूर चला संग्राम में, कब हूं न देवे पीठ।
आगे चले पीछे फिरे, ताका मुख नहीं डीठ॥

राना ने कहा "वीरो! धन्य हो। क्यों न हो, तुम सिंह पुरुष हो, किन्तु तुम संख्या में बहुत कम हो और तुम को बहुत बड़ी सेना से सामना करना है, सोच समझ कर पग आगे उठावो। राजपूतों के मुख लाल हो गये, वह कहने लगे हमारा कर्तव्य राना के पीछे पीछे चलना है, न्यून अधिक संख्या की चिन्ता नहीं। जहां राना होगा, हम भी वहां होंगे मृत्यु हो अथवा जीवन, बसती हो या जंगल, लड़ाई हो या सुख का स्थान हो राना की सेवा करना हमारा कर्तव्य आवश्यक है। विचारना उस का कर्तव्य है, हमारा काम केवल आज्ञा मानना है। वह स्वयं भली भान्ति जानता है कि हम को कहां शीश कटाने की आवश्यकता है।

अनन्त मिश्र छुट्टी पाने के पश्चात् उदयपुर की ओर चला। उसे पता नहीं था, कि उस को बचाने वाला स्वयं राना राजसिंह था। वह शीघ्र दौड़ता हुआ उदयपुर जा निकला और इन पचास मनुष्यों का समूह युद्ध की अभिलाषा करता हुआ रूपनगर की ओर चला और एक पहाड़ी पर सुरक्षित स्थान में छिप कर बैठ रहा।

रूपनगर में चंचलकुमारी की दिशा विचित्र थी, परन्तु

वह जानती थी कि राना अवश्य आवेगा। हां समय थोड़ा था, वह क्या जानती थी कि राना पहुंच गया और मार्ग में ही दिल्ली की सेना को काटने के निमित्त बैठा है। वह सोच रही थी परन्तु उसे किसी प्रकार की घबराहट नहीं थी। वह जानती थी यदि राना ने सहायता की तो अच्छा नहीं तो विष उस की सहायता के लिए प्रत्येक समय हाथ में रक्खा ही है।

मानिकलालसिंह बड़ा चंचल, चतुर और बुद्धिमान था, वह अपने घर नहीं गया, उसने राना की सहायता के निमित्त अपने आप को अर्पण कर रक्खा था, जब वह मनुष्य पहाड़ के दर्रे में छिप कर बैठ गये। उस ने मुगलों जैसा भेष बना लिया और घोड़ा दौड़ाते हुए उन में जाकर मिल गया।

उधर चंचलकुमारी के विदा की तैयारी हो रही थी। स्त्रियों ने उस का भली भान्ति शृंगार कर दिया। विचारी ने चुपके से बिना किसी रोक टोक के उन्हें अपना काम करने दिया। जब कुछ समय मिला निर्मल बाई उसके पास आई नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। चंचल बोली "सखी ! तू क्यों उदास है ?" उस ने रोकर उत्तर दिया "क्या कहूं कैसा विपरीत समय आ गया।"

चंचल मुसकराई और कहने लगी विधाता के लेख को कौन मेट सकता है, बहिन ! तू कुछ चिन्ता न कर।

निर्मल—मेरे करने धरने से होता ही क्या है, मैं तेरे साथ दिल्ली चलती, परन्तु मैं जानती हूं कि तेरे जीवन के दिन इने गिने हैं और तू मार्ग में ही प्राण त्याग कर देगी।

चंचल—न बहिन! मैं कदापि ऐसा न करूंगी, मैं अन्त समय तक देखूंगी, मैं डरपोक अथवा कायर नहीं हूं, कौन जाने कब, कहां और किस रूप में मुझ को परमात्मा की ओर से सहायता मिले। तू अपनी बहिन को अनाड़ी मत समझ मैं अन्त समय तक साहस को नहीं छोड़ूंगी।

निर्मल—ईश्वर तेरी सहायता करे।

चंचल—बस उसी का आश्रय है।

तैयारी हो गई, अन्त समय आ पहुंचा। निर्मल और सहेलियां उस को राज मंदिर में दर्शन के निमित्त ले गई और सब वहां जाकर सच्चे हृदय से प्रार्थना करने लगीं। चंचल ने अपने मन में कहा "प्रभु! जहां कोई सहायक नहीं होता, वहां अपने भक्त के हेतु आप खड़े रहते हो। कोई स्थान ऐसा नहीं है जहां तुम्हारी रक्षा का हाथ न पहुंचता हो। भगवन्! अब तुम्हारे बिना किसी का आश्रय नहीं रहा। अनन्त मिश्र का पता नहीं। प्रभु अबला की लाज अब तुम्हारे हाथ है, चंचल के नेत्रों से पहिले आंसू नहीं गिरे थे। परन्तु वह मन्दिर में दिल खोल कर रोई और फिर वहां से लौट कर माता पिता से विदा हुई। राजभवन में कोलाहल मच गया।

अब आज से चंचल देखने को न मिलेगी, लोग तरसेंगे और उसे न देख सकेंगे। पालकी महल के सामने आई, और रोती हुई चंचल उस पर सवार हुई। उसके चहुं ओर मुसलमान सेना थी, एक सहस्र मुग़ल आगे और एक सहस्र मुग़ल पीछे थे, आस पास सहेलियों के रथ व दस बीस हिन्दू भृत्य सेवक आदि संग थे। जिस प्रकार पहाड़ी नदियां वेग पूर्वक चलती हैं, उसी प्रकार मुग़ल सेना ने वहां से प्रस्थान किया। यह सब मन में बहुत प्रसन्न थे, जब रूपनगर से दस मील के अन्तर पर चले आये, चंचल के कान में एक गाने वाले की भनक पड़ी, गाने वाला इस प्रकार गा रहा थाः—

तेरी गति लखि न पड़े।

सो मेरे प्रभु ! तेरी गति लखि न पड़े ॥

ऋषि मुनि योगी थक २ हारे परिश्रम बहुत करे

भेद अपार पार नहीं पावैं बुद्धि मति सकल हरे

सो मेरे प्रभु०

दीनानाथ दीन के स्वामी दीनदयाल हरे।

भगतन को प्रभु आन संभारा जब २ विपद् परे

सो मेरे प्रभू०

चंचल के कान खड़े हुए। सब सैनिक तो आनन्द में मग्न थे परन्तु वह दिल ही दिल में समझ गई कि परमात्मा ने मेरी सहायता की। उसके नेत्रों से प्रेम और भक्ति के आंसू गिरने लगे और उस ने पालकी के भीतर सिर झुकाकर ईश्वर का धन्यवाद दिया ! प्रभु ! तू कभी अपने पुत्र तथा पुत्रियों को नहीं भुलाता। अब जाकर उस को धैर्य हुआ यह गीत गाने वाला मानिकलाल था, जो भेष बदले हुए पालकी के साथ साथ आ रहा, चंचल ने पालकी की चिक उठा कर गाने वाले की ओर देखा और वह भी जान गया कि चंचलकुमारी गीत के आशय को जान गई है।

दिल्ली जाने का मार्ग केवल एक था और वह उसी पहाड़ी की ओर से था जहां राना राजसिंह के साथी शत्रुओं को दमन करने के निमित्त बैठे थे। वह अत्यंत सांकर था और कहीं टेढ़े मेढ़े चटान पड़े थे। उनका दर्रा के बीच पहुंचना था कि पत्थरों की मूसलाधार वर्षा होने लगी, सैकड़ों मनुष्य पिस कर मर गये। किन्तु पत्थर वर्षाने वालों का कहीं पता न मिला। मार अभी सेना के पहिले भाग पर की गई थी, जहां राजकुमारी की पालकी थी, उस तक उनका असर नहीं पहुंचा था। मुग़ल घबराये ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाश स्वयं पत्थरों की वृष्टि कर रहा है, न जाने का कोई मार्ग न ठहरने का स्थान, महा-कठिनता का सामना था। एक हुल्लड़ सा मच

गया था, प्रत्येक को अपनी जान की पड़ गई थी। इतने में मुसलमानों ने पीछे लौटने का विचार किया, क्योंकि आगे की ओर मार्ग बन्द प्रतीत पड़ता था किन्तु लौट कर जाना असम्भव था। मानिकलाल ने यह विचार कर कि कहीं बना बनाया खेल बिगड़ न जाय, पालकी को एक सुरक्षित स्थान पर रखवाया और पीछे की ओर हट कर भाग निकला।

चंचल अपने विचारों में मग्न पालकी में बैठी रही, किन्तु मुसलमानों की आत्माएं कांपती थीं। आगे बढ़ नहीं सकते, पीछे लौटने की इच्छा नहीं होती थी। राजसिंह ने अपने पचास मनुष्यों को भली भान्ति एक दूसरे स्थान पर बांट रक्खा था, जो समय अनुसार शत्रुओं से अपने को बचाये हुए काम कर रहे थे।

मुगल सेना का सरदार मुबारक नामी एक बुद्धिमान और चतुर सेनापति था, उसने बहुत कुछ विचारा कोई बात समझ में नहीं आई, किन्तु उस के मन में संदेह हुआ क्योंकि पालकी पर एक पत्थर भी किसी ने नहीं मारा था। उस को भय हुआ कि कहीं चंचल कुमारी के ले जाने के निमित्त किसी राजपूत ने साहस न किया हो। यह विचार कर वह घोड़े पर से उतर पड़ा और तंग मार्ग से फिर कर किसी और पथ से चलने का प्रबन्ध किया, अभी उस ने सेना को

अपने आशय से सूचित ही किया था कि राजसिंह के मनुष्यों ने उस पर फिर पत्थर वर्षाना आरम्भ कर दिया और अब मुगलों की विशेष सेना मारी गई।

मुबारक ने समझ लिया कि क्षत्रियों के संग मनुष्य कम हैं, इस कारण यदि धैर्य्यता से काम लिया गया तो फिर भी शाही सेना से न लड़ सकेंगे, उसने आज्ञा दी कि जिस ओर से पत्थर आते हैं, उस ओर बन्दूकों का फायर करो। मुबारक के संग जो बन्दूकची आया था, उसका नाम हसनअली था, उस ने एक बाढ़ दाग दी जिस से कुछ राजपूत मारे गये, शेष छिप रहे। किन्तु मन में डर गये कारण यह कि उन के पास बन्दूकें नहीं थीं।

राजसिंह ने सीटी दी, राजपूत मुड़ कर उस ओर एक स्थान पर इकट्ठे हो गये जिस से सेना की दृष्टि उन पर न पड़े, वह पीछे की ओर से लौट कर शत्रुओं को मारने का उपाय विचारने लगे। राजसिंह को जीतने की आशा न थी क्योंकि अब उस के संग पचास से भी कम मनुष्य रह गये थे, अभी वह विचार रहे थे कि किस ओर काम करना चाहिए और शाही सेना भी सोच रही थी कि किस स्थान पर शत्रु का सामना करना चाहिए, इतने में एक शोभाशाली स्त्री जो नख से शिख तक मणियों से लदी थी हाथ में खड्ग लिए राजपूतों की ओर आती हुई दिखाई

ही, उस को देख कर राजपूतों को आश्चर्य्य हुआ और उत्साहित हो युद्ध की चेष्टा करने लगे।

यह स्त्री चंचलकुमारी थी, जिसने बन्दूक के फायर और राना की सीटी के शब्द को सुनकर पालकी में चुपचाप बैठी रहना उचित न समझा। वह वहां से निर्भयता पूर्वक चली आई जहां राना खड़ा था, राना ने पूछा "आप कौन हो?" उसने कहा "महाराज! मैं एक स्त्री हूं आप को प्रणाम करने आई हूं और आप से एक भिक्षा मांगती हूं।"

राजसिंह—वह क्या है?

चंचल—मैंने ऐसी चाल ढाल स्वीकार की जिस को भली स्त्रियां स्वीकार नहीं करतीं। लाज शर्म स्त्री जाति की शोभा है, इस हेतु आप मेरी भूल को क्षमा कीजिए।

राजसिंह—यह बात क्या है, क्षमा कैसी, समयानुसार तुम ने मुझे बुला भेजा, मैं राजपूत था, तुम्हारी सेवा के लिए आ गया।

चंचलकुमारी ने फिर राजसिंह की परीक्षा के लिए हाथ बांध कर कहा "मैं चंचल हूं, मेरी बुद्धि चंचल तथा मेरा नाम भी चंचल है। उस समय मैंने कुछ विचार नहीं किया था, अब मैं दिल्ली जाना चाहती हूं।" राजसिंह आश्चर्य होकर कहने लगा "मुझे तुम्हारे रोकने का कोई अधिकार नहीं है जहां तुम्हारा जी चाहे तुम जा सकती हो, परन्तु यह समय

ऐसा है कि यदि मैं तुम को जाने की आज्ञा देता हूं तो मुसलमान समझेंगे कि राना डर गया। राना का वंश किसी से डरता नहीं, जब तक युद्ध समाप्त न हो जावे, तब तक तुम यहां रहो, थोड़े समय में निर्णय हुआ चाहता है फिर मैं कभी तुम को न रोकूंगा।

चंचल—महाराज! क्या आप एक अज्ञान और मूर्ख अबला की भूल को क्षमा न करेंगे?

राजसिंह—एक क्या दस बीस भूलें क्षमा की जा सकती है, परन्तु यहां वंश के मान पर आ बनी है, तुम धीर धरो अभी मैं इस झगड़े का निर्णय किए देता हूं, युवको! तैयार हो जाओ।

चंचल—हंसी, एक चमकती अंगूठी राना को दिखा कर कहने लगी "इस के नगीने के नीचे विष है, यदि तुम मेरा मार्ग रोकते हो तो अभी मैं आप के देखते २ अपना जीवन समाप्त किये देती हूं।

राजसिंह—खिलखिला कर हंसा, मैंने बहुत सी राजपूतनियां देखी हैं। परन्तु तुम सब में विचित्र हो. तुम नहीं जानती हो, युद्ध के समय वीर राजपूत स्त्रियों का ध्यान नहीं करते हैं। जब शत्रु सामने हो, तो धर्म यह कहता है कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, मनुष्य, गाय, ब्राह्मण किसी का ध्यान न किया जाय, किसी की क्या शक्ति कि इस समय तुम

हमारे पास से चली जाओ। सुनो! इस समय तुम हमारी बन्दी हो, तुम्हारी दशा बंदियों की सी है। हम थोड़े से मनुष्य हैं, यदि बुद्धिमत्ता से लड़ते तो शत्रु को मार गिराते। अब हम प्रगट-रूप से युद्ध करेंगे हमारे मरने के पश्चात् तुम दिल्ली चली जाना, किन्तु हम यदि जीत भी गये तब भी तुम को न रोकेंगे।

राजसिंह की बात सुनकर चंचल का मन प्रसन्नता से उछल पड़ा। वीर चूड़ामणि! तुम धन्य हो, तुम से ही हिन्दूपन की लाज है। तुम धर्म्म को समझते हो, मैं तो तुम्हारी दासी हूं, राजपूतनी ऐसे सिंह का संग छोड़ कर कदापि शृगाल के संग रहना नहीं चाहती। बादशाह ने बेगम बनाने के निमित्त बुला भेजा था, मैं तुम्हारी लौंडी हूं, आज्ञा दो तो मैं उस सेना को भी देखूं, जो मुझे लेने को आई है।

यह कहकर चंचल कुमारी वहां से निकल खड़ी हुई। सब आश्चर्य्य में पड़ गये। किसी का साहस नहीं था कि उस को रोक सके। वह वहां से धीरे २ निर्भयता पूर्वक उस स्थान पर पहुंची, जहां तोपों में गोले बारूद भर रहे थे। हसनअली ने राजपूतों को देख लिया था बन्दूक तथा तोप के फ़ायर करने की तैयारी हो रही थी। उसी समय एक अपसरा मोती और मणियों में सिर से पांव तक लदी हुई वहां आकर खड़ी हो गई। सब आश्चर्य्य हुए। यह कौन अप्सरा है जो इस प्रकार निर्भयता पूर्वक तोपों के सन्मुख आकर खड़ी है।

चंचल ने पूछा "तुम्हारा सेनापति कहां है ?" मुबारक सन्मुख आया "कहिये क्या आज्ञा है, दास उपस्थित है आप कौन हो ?" राजकुमारी ने कहा "मैं एक सामान्य स्त्री हूं, तुम से एक विनय करने आई हूं, जरा मेरे सन्मुख आ जावो तो मैं कहूं"। मुबारक–वहां आकर खड़ा हो गया, जहां राजकुमारी थी।

चंचल—मैं रूपनगर की राज कन्या हूं यह सेना मेरे लेने के निमित्त आई है, क्या तुम मेरी विनय को स्वीकार करोगे ?

मुबारक—यदि आप की आज्ञा शाही आज्ञा के विरुद्ध नहीं तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।

चंचल—सुनो ! मेरी इच्छा नहीं कि मैं मुसलमान बादशाह के संग व्याही जाऊं ? क्योंकि हमारा धर्म्म आज्ञा नहीं देता। हमारा पिता निर्बल है इस कारण भयभीत होकर उस ने मुझे तुम्हारे संग कर दिया। परन्तु मैंने राजसिंह को संदेश भेज कर बुलाया है, यह मेरे मन्द भाग्य हैं कि उस के संग केवल पचास मनुष्य हैं, तुम अनुभव कर सकते हो, उन में कितना बल है।

मुबारक—तुम क्या कहती हो, पचास मनुष्यों से इतनी बहुत बड़ी सेना मुगलों की मारी जाय कदापि सम्भव नहीं।

चंचल—तुम ने कदाचित् हल्दी घाट की लड़ाई का

हाल सुना होगा। राजपूत अत्यन्त लड़ाके होते हैं, वह शत्रुओं की संख्या की कुछ परवाह नहीं करते। किन्तु मुझे यह स्वीकार नहीं कि यह पचास अनमोल जीव भी मारे जायें। तुम को केवल मुझ से काम है, मैं तैयार हूं, चलो मैं दिल्ली चलती हूं, अब राजासिंह पर तोपों का फ़ायर न हो।

मुबारक—मैं जान गया, तुम को राजपूतों की विवशता पर दया आई, तुम अब प्रसन्नता से हमारे संग चलने को तैयार हो और व्यर्थ हानि को स्वीकार नहीं करती हो। मुझे कोई आपत्ति नहीं परन्तु कहिये राजपूत क्या चाहते हैं ?

चंचल—राजपूत भला कदापि मरने तथा मारने से हटने वाले नहीं हैं। मैं तुम्हारे पास हूं तुम उन से सन्धि कर लो और मुझ पर दया कर युद्ध को बन्द कर दो।

मुबारक—किन्तु लुटेरों के समूह को कुछ दण्ड दिये बिना चलना पाप है।

चंचल मैं जान गई तुम मेरा कहना न मानोगे !

मुबारक—घबराया नहीं, बहुत अच्छा, जब आप चलने को तैयार हैं तो मैं आप का विरोध न करूंगा।

चंचल—हां चलती तो हूं, किन्तु जिस कारण बुलाई गई हूं, वह सर्वथा असम्भव है। मुझे राजभवन में जाने में आपत्ति होगी।

मुबारक—यह तुम क्या कहती हो, मेरे जैसा बुद्धिमान मनुष्य ऐसी चाल में नहीं आ सकता।

मुबारक—सामान्य बुद्धि का मनुष्य न था, वह अवश्य उस के कैद करने की इच्छा करता। उसके आचार व्यवहार को देखकर चंचल कुमारी बोली " स्मरण रक्खो मेरे हाथ में हलाहल विष जीवन समाप्त करने के निमित्त उपस्थित है,, मुबारक ने घबराकर कहा " बहिन! मेरी क्या सामर्थ्य है, तुम पर बलात्कार कर सकूं, तात्पर्य्य केवल यह है कि बादशाह की आज्ञा की पालना हो।

यह बातें हो रही थीं, राजसिंह लड़ाई के लिये तैयार खड़ा था। इतना अवकाश मिलने पर उसने अपनी सेना के स्थान को बदल दिया कारण कि तोप तथा बन्दूक का सामना करना कठिन था।

चंचल कुमारी जब मुबारक से बात चीत कर रही थी, उस की दृष्टि राजसिंह का अनुसरण कर रही थी। जब उस ने देखा कि राजसिंह ने स्थान बदल दिया है, वह गुप्त रीति से वहां से हट गई और राना के पास आकर कहने लगी लड़ाई से बचना असम्भव है, आप कृपया अपनी तलवार मुझे दीजिये, मैं आप की दासी हूं और हो सका तो आप के संग जीवन त्याग करूंगी।

राजसिंह ने हंस कर कहा "तू वीराङ्गना देवी है, ले यह तलवार मैं तुझ को देता हूं परन्तु इस समय लड़ना तुम्हारा काम नहीं है, और न उस की आवश्यकता है, लोग कहेंगे राना ने स्त्री से सहायता ली थी" चंचल बोली "आप स्त्रियों को क्या समझते हो, ऐसी बात मुख से निकालना उचित नहीं।"

मुबारक अभी विस्मय में पड़ा है, राजसिंह की सेना पहाड़ के एक सुरक्षित कोण में मारने के हेतु खड़ी है। इतने में पीछे की ओर से तोप चलनी आरम्भ हुई और बहुत से मुसलमान मारे गये। कारण यह कि वह आपस में विचार रहे थे कि क्या करना चाहिए। उनके पांव उखड़ गये, केवल इने गिने मनुष्य बचे थे जो भाग निकले और अब राजसिंह ने उनका पीछा करने की आवश्यकता नहीं समझी।

सब को आश्चर्य्य था कि यह दैविक सहायता किस ओर से आ गई, मुसलमान जानते थे कि पचास मनुष्य क्या कर सकेंगे, और उधर राना भी मरने को तैयार था। समय पर इस प्रकार की सहायता मिलना आश्चर्य्य था, क्योंकि उसे इसकी किंचित् मात्र भी आशा नहीं थी।

बात यह हुई मानिकलालसिंह बड़ा चतुर था। राजसिंह की निर्बलता उस को विदित हो गई थी। जब उस ओर पहाड़ पर शाही सेना पर राजपूतों ने आक्रमण किया, वह शीघ्रता से रूपनगर जा पहुंचा और किसी प्रकार

राजा की सेना को सहायता के निमित्त ले आया और उस ने बड़ी चतुरता के साथ शाही सेना को परास्त कर दिया और राना के मनुष्यों को भी काल के मुख से बचा दिया।

राजसिंह चंचल कुमारी को संग लेकर उदयपुर आया।

जब मुसलमानों की सेना कट कर मर चुकी, मानिकलाल सिंह ने राना के पास आकर उस के रकाब को चूमा, राना ने पूछा—"अब तक तुम कहां थे ?" उस ने कहा—"मैं महाराज की सेवा में ही लगा हुआ था। जिस समय मैंने शाही सेना की संख्या को देखा मुझे भय हुआ क्योंकि मेरे विचार में पचास मनुष्य उसका सामना करने के लिए कदापि पर्याप्त न थे। मैंने समय को देख कर रूपनगर की सहायता मांगनी उचित समझी और ईश्वर का धन्यवाद है कि मुझ को समय अनुसार सहायता मिल गई और आपने देख लिया कि यह उसी का फल था। राना ने मानिकलाल की पीठ ठोंकी और उस समय से उसका प्रेमी बन गया।

चंचल कुमारी राना के भवन में गई और जब हर प्रकार से निश्चिन्त हो गई तो राना ने उसको पास बुला भेजा। वह लज्जा से गर्दन नीचे किये हुए आई और उस के सन्मुख खड़ी हो गई। राना ने कहा—"राजकुमारी ! मैंने तुम्हारी आज्ञा की पालना कर दी, तुम मुसलमानों के हाथ से बच

गई, अब जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो कहो, मैं तुमको रूपनगर भेज दूं अथवा तुम जहां चाहो वहां रह सकती हो।

चंचल—महाराज! आप मुझ को हरण कर लाए हो, क्षत्रियों में इस प्रकार के कार्य्य हुआ करते हैं। चाहे वह किसी प्रकार माननीय न हों।

राना—मैंने तुमको हरण नहीं किया, किन्तु क्षत्री धर्म की रक्षा तथा राज-कुल की बड़ाई के विचार से तुम्हारी सहायता को गया था, अब तुमको मुसलमानों के हाथ से छुटकारा मिल गया, जहां तुम्हारा जी चाहे वहां मैं भेज सकता हूं।

चंचल के मन को राना की बातों ने मोहित कर लिया, राज-कुमारी अत्यन्त सुन्दर थी, देश देश के राजा उस के संग विवाह करने को चाहते थे। उस ने राजसिंह को केवल सहायता के निमित्त बुलाया था, मोती की माला दूसरे शब्दों में विवाह का सन्देशा था। परन्तु उदार चित्त राना ने चंचल को आधीन करना तथा उसकी स्वतन्त्रता को रोकना उचित न समझा। उसने दृढ़ता पूर्वक उसको समझा दिया कि "वीर राजपूत तुच्छ व्यवहारिक बातों से नहीं डगमगाते।" चंचल के मन में जहां उस के प्रति मान उत्पन्न हुआ वहां अत्यन्त दुःख में पड़ गई, विचारी क्या कहती। स्त्रियां पुरुषों के सन्मुख प्रगट वाद विवाद करना अनुचित तथा नीति के विरुद्ध समझती हैं, वह उसी प्रकार लज्जा से गर्दन नीचे

किये हुए कहने लगी, "महाराज ! मैं अल्पबुद्धि कन्या हूं, मैं राज-धर्म अथवा कुल-धर्म को क्या जानूं । यदि आप को इस प्रकार वाद विवाद करना था तो आपने मुझ को दिल्ली क्यों न जाने दिया और मैंने उस समय आप से विनय भी की थी।

राना—मुझ को उदयपुर की सभ्यता का स्मरण था। मैंने तुम से कह दिया था कि लड़ाई के पश्चात् तुम को कोई न रोक सकेगा। इस कारण अब मैं उस वचन के पालनार्थ इस प्रकार से बात चीत कर रहा हूं।

चंचल—महाराज ! आप धन्य हो, वचन का पालन करना सूर्य्यवंशी क्षत्रियों का परम धर्म्म है।

राना—राजकुमारी ! बात यह है, उदयपुर वालों ने बड़ी कठिनता से और परिश्रम से इस पाठ को सीखा है, कि किसी की स्वतन्त्रता को हानि न पहुंचाना चाहिए। जिस समय तुम ने मेरे पास अपना पत्र तथा हार भेजा था। वह कष्ट तथा आपत्ति का समय था। चिन्ता में मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। मनुष्य उस समय ऐसा कार्य्य कर डालता है, जिसके कारण पीछे को हाथ मलना पड़ता है। भीष्मपितामह विचित्र वीर्य्य के लिए किसी राज-कुमारी को हर लाया था। उसका चित्त किसी अन्य राजा पर लगा था, दोनों के लिए इसका अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं हुआ। इस से मैं तुम

को पूर्ण अधिकार देता हूं, जिस प्रकार चाहो वैसा करो।

चंचल—महाराज! मैं तुम्हारी शरण में आई थी।

राना—तुम ने मेरे वंश को बड़ी बड़ाई दी, मैं प्रसन्न हूं, और तुम उदयपुर रह कर क्षत्री धर्म का पालन कर सकोगी। परन्तु एक बात और है जब तक कि तुम्हारे माता पिता प्रसन्नता पूर्वक अपने आशीर्वाद के साथ मुझ को अपना जमाता न बनावें तब तक सम्भव है पीछे तुम को दुःख हो। इस कारण यदि तुम उचित समझो तो रूपनगर जाकर अपने माता पिता से मिल आवो।

चंचल—महाराज! जिस पिता ने मुझ को औरंगजेब के पास भेजना चाहा था, क्या आप फिर उस के पास मुझे रहने की आज्ञा देते हो।

राना ने चंचल कुमारी को एक चित्त होकर देखा और उसको महाराणी कह कर अपने निकट एक कुरसी पर बैठा लिया। उस के पश्चात् उन के विवाह सम्बन्धी कार्य्य हुए और वह उदयपुर में पति तथा पत्नि बन कर रहने लगे। रानी ने सब से पहिले सेना के प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया, और अपनी सखी निर्मल कुमारी को रूपनगर से बुलाकर मानिकलाल के संग विवाह दिया।

जब औरंगजेब ने इस समाचार को सुना कि चंचल कुमारी उदयपुर चली गई, उसके क्रोध की अग्नि प्रचंड होगई

और दिल्ली में हल्ला मच गया। उस समय से औरंगजेब राजपूतों का शत्रु बन गया। फिर (जजिया) लेने के बहाने कितने ग्राम उजाड़ दिये और सारे राजपूताने में एक मंदिर भी नहीं बचा जिस की मूर्त्तियों के नाक कान न काटे गये हों। जिन मनुष्यों ने आबू पर्वत अथवा उस के इधर उधर के बड़े और सुन्दर मन्दिरों को देखा है वह हमारी बात को सच मानेंगे। आबू पर जैनियों का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। जैनी विशेष शांत होते हैं। किन्तु क्रोध के प्रवाह में बादशाह ने हिन्दुओं के साथ उनके भी मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। कितने मन्दिर तुड़वा दिये गये। कितनों की जगह मसजिदें बनवा दी गई और जिनके तुड़वाने में विशेष समय और अधिक रुपया व्यय होने का भय था उन की मूर्त्तियें तोड़ डाली गईं। राना राजसिंह ने चंचल के परामर्श से एक पत्र औरंगजेब को लिखा किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ, उसके उत्तर में राजसिंह को किसी मनुष्य द्वारा कहलाया गया कि अनुचित कार्य्यवाही का दण्ड किसी समय उदयपुर को भोगना पड़ेगा। चंचलकुमारी जानती थी कि औरंगजेब अपने आत्मा के क्रोध को किसी न किसी समय निकालेगा इस कारण वह स्वयं सेना सम्बन्धी कामों में विशेष ध्यान देने लगी।

औरंगजेब बहुत बड़ी सेना लेकर उदयपुर पर चढ़ आया। इतिहास द्वारा विदित होता है कि या तो इतनी

सेना लेकर ईरान के बादशाह कैखुसरू ने यूनान पर आक्रमण किया था अथवा औरंगजेब ने उस के पश्चात् उदयपुर के नाश के हेतु चढ़ाई की थी। उदयपुर की दिल्ली की अपेक्षा क्या स्थिति थी। हाथी और मच्छर का युद्ध था। इतनी सेना इस देश में कभी इकठ्ठी नहीं हुई थी। वह प्रण करके आया था कि उदयपुर के वंश में एक मनुष्य जीता न छोड़ा जायगा। जिस ने निश्चय अपने पिता को अन्धा किया, अपने तीन भाईयों को निर्दयता से फांसी दिलवा दिया और उन की सन्तान को चुन २ कर मार डाला, वह कब किसी विरोधी और अन्य जाति के मनुष्य को जीता रहने देता है।

कहावत है:—

जाको राखैं साइयां, मार न सके कोय।
बाल न बांका कर सके, चाहे जग वैरी होय॥

इस वचन की सच्चाई का हम कुछ इसके अन्तिम परिणाम में देखते हैं। औरंगजेब की सेना चार भागों में विभक्त थी, उसने चारों ओर से उसे घेर लिया। राजसिंह भी बड़ा चतुर था, उसने युद्ध क्षेत्र छोड़ दिया, थोड़ी सी सेना से वह कब औरंगजेब का सामना कर सकता था। वह पहाड़ पर चढ़ गया जिस का मार्ग दुर्गम था और वहां तक दूसरों का पहुंचना असम्भव था, केवल वीर तथा बुद्धिमान् राजपूतों के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए उन पर चढ़ना कठिन

था। पहाड़ पर आकर राना ने भी सेना के तीन भाग कर लिए एक दोवारी, दूसरा दीलवाड़ी और तीसरा भाग नैन पूर्व की ओर रखा गया। राजसिंह में राना सांगा और महाराना प्रताप का रुधिर था। इस समय उस ने किसी का विश्वास नहीं किया, अपने दोनों पुत्रों को बुला कर कहा— "रावल बापा के वंशजो! आज जैसी सेना उदयपुर के नष्ट करने के निमित्त आई है, पहिले कभी नहीं आई थी, बाबर अथवा अकबर के समय में सांगा और प्रताप को अनेक कष्ट दिये गये। उस समय मुसलमानों का बल भी देश में कम था। अब उन का राज्य अधिक दृढ़ है और उदयपुर निर्बल है। उधर अगणित सेना है और इधर इने गिने मनुष्य हैं परन्तु हमको अपने धैर्य और वीरता पर भरोसा है क्योंकि उदयपुर की मान मर्य्यादा के निमित्त हम में से कोई भी मनुष्य युद्ध क्षेत्र को मरते दम तक न छोड़ेगा। दोनों लड़कों ने पिता को प्रणाम किया। उसने जयसिंह बड़े लड़के को पश्चिम सीमा पर नियत किया और छोटे भीष्मसिंह को पूर्व की ओर और उसने स्वयं नैन के दर्रे को रोक रक्खा।

यह कोई धर्म युद्ध नहीं था, किन्तु दो वंशों के युद्ध लड़ने के निमित्त एकत्र हुए थे।

औरंगजेब का एक पुत्र अकबर देवारी की ओर पचास सहस्र सेना की कमान पर था। आज़मशाह का बिचले भाग पर अधिकार था। तीसरे स्थान उदयसागर के निकट वह स्वयं

तम्बू डाले पड़ा था। शाहज़ादा अकबर ने साहस से काम लेकर पहाड़ी पर अधिकार करना चाहा। जयसिंह तड़पते हुए सिंह की तरह उस पर गिरा और अकबर ने भाग कर गुजरात का रास्ता लिया। आज़मशाह की सेना सम्मुख आई उसकी भी दशा बिगड़ गई और मुग़लों में कुछ ऐसी खलबली पड़ गई कि सब भाग निकले। इस समय करोड़ों रुपयों का माल राजपूतों के हाथ आया। हाथी, घोड़े, ऊंट लादने के पशु, खाद्य पदार्थ अस्त्र तथा शस्त्र उनको मिले। राजपूत पहाड़ी रास्तों पर जान देने को डटे हुए थे। सब ने समझ लिया था कि यह उदयपुर का अन्त समय है और इस वास्ते सब दिल खोलकर लड़ते थे। राजसिंह ने समय देखकर मध्य की सेना पर आक्रमण कर दिया और उनको घेर कर मारा। उस स्थान पर शाहज़ादी ज़ैबुलनिसा और उदयपुरी बेग़म भी बादशाह के संग थीं। जिस हाथी पर यह दोनों सवार थीं उसे राजपूतों ने घेर लिया। और तो भाग गये यह बन्दी होगईं इनमें जोधपुरी बेगम भी थी जिस को राना ने कैद नहीं किया किन्तु आदर पूर्वक औरङ्गज़ेब के पास भिजवा दिया। औरङ्गज़ेब ने लौट कर पहाड़ पर आक्रमण करने का विचार किया किन्तु जब पत्थरों की मूसलाधार वर्षा होने लगी और उधर से गोले आने लगे उस के सहस्रों सैनिक और घोड़े मारे गये अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा। वह चाहता था कि उदयपुर का नाम सदा के लिये मिट

जावे किन्तु युद्ध करते घरते न बन पड़ा, उसकी दशा अत्यन्त बुरी होगई। एक समय पर राजपूतों ने उदयसागर के निकट उसको घेर लिया और बड़ी कठिनता से उसने अपने प्राण की रक्षा कर पाई उसकी दूसरी बेगमें इस दशा को देखकर बड़ी दुःखी हो गई और उनकी घबराहट ने औरङ्ज़ेब को और भी दुखित कर दिया।

उदयपुरी बेगम व ज़ैबुलनिसा कैद में थीं। महारानी ने उदयपुरी बेगम को अपने पास बुला भेजा और उन की मान और मर्य्यादा के विचार से एक पृथक आसन तैयार करा दिया। उस के पास आने से पहिले उदयपुरी दुःखी थी, परन्तु चंचलकुमारी की सुशीलता और सरलता को देख कर उसमें अहंकार आगया और यह कहने का साहस किया कि क्यों! मालुम होता है तुम्हारी मृत्यु आगई है इसी लिये तुम ने हम को इस प्रकार बुला भेजा है? चंचल इस बात को सुनकर हंसी। बेगम तुम को मालूम नहीं राजपूत अपना जीवन अथवा मृत्यु अपने हाथ में रखते हैं। हां इस समय तुम्हारा जीवन अथवा मरण मेरे अधिकार में है किन्तु हम इसके निर्णय के लिए तैयार नहीं हैं। तुम को इस लिए बुला भेजा है कि हमारा हुक्का भरदो। उदयपुरी बेगम सहम गई सिर तक पसीने में नहा उठी, क्रोध में आकर उस ने उत्तर दिया "बादशाह की बेगमें हुक्का नहीं भरतीं"। चंचल बोली "संभव

है किसी समय तुम बादशाह की बेगम रही हो किन्तु इस समय तुम्हारी दशा बंदीजन की सी है, तुम मेरी दासी हो इस वास्ते हुक्का भरने की आज्ञा दी जाती है। उदयपुरी बेगम के तलवों में आग लग गई और बोली कि तुम्हारी क्या सामर्थ्य कि बादशाह की बेगम से हुक्का भरवाओ। चंचल कुमारी ने उत्तर दिया। तुम ऐसा न कहो सामर्थ अधिकार वाले को होता है किसी समय तुम्हारे बादशाह को भी राना का हुक्का भरना पड़ेगा तुम्हारी क्या सामर्थ है। चंचल ने एक दासी को सङ्केत पूर्वक कहा वह उदयपुरी को उठाने लगी। किन्तु वह अपने स्थान से नहीं उठी। अंत में दो दासियों ने उस को उठाया वह थर २ कांपने लगी। और जब चिलम उस के हाथ में दी गई, वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी लौंडियों ने उस को उठा कर एक स्वच्छ पलंग पर लिटा दिया।

उस के पश्चात् महारानी ने ज़ैबुलनिसा को बुलाया यह सुन चुकी थी कि उदयपुरी बेगम के संग क्या बर्ताव हुआ है यह शोकातुर हो गई किन्तु जब महारानी के पास आई उस ने सुशीलता पूर्वक उस का आदर किया और एक दूसरी गद्दी पर बैठा दिया। जैबुलनिसा बड़ी बुद्धिमान और चतुर थी, उसने सभ्यता को हाथ से जाने नहीं दिया। चंचल उस को मिल कर बहुत प्रसन्न हुई, और अपने हाथ

से इतर व पान दिया लौंडियां उस की सेवा करती रहीं, कोई अनुचित बात नहीं हुई, और वह जैसे आवभक्त के साथ आई थी वैसे ही अपने स्थान को लौट गई। पश्चात् जैबुलनिसा और चंचलकुमारी में एक प्रकार का प्रेम उत्पन्न होगया और शाहजादी कभी २ धन्यवाद भी दिया करती थी।

दूसरे दिन उदयपुरी बेगम फिर चंचल कुमारी से मिली और उस दिन अपने छूटने के निमित्त बहुत सा रुपया वा जवाहिरात देना चाहा रानी ने कहा यदि तुम हमारी सेवा स्वीकार करो तो हम तुम को छोड़ सकती हैं उदयपुरी बोली हे ग्राम निवासिनी ! तेरा यह साहस अत्यन्त आश्चर्ययुक्त है यह अनुचित वर्त्ताव कदापि क्षमा न किया जा सकेगा, यह कह कर वह वहां से चलने को तैयार हुई चंचल कुमारी हंस कर कहने लगी मैं ग्रामनिवासिनी अवश्य हूं, आज तुम को उस की लौंडी होने की पदवी दी गई, और तुम जाती कहां हो ? क्या तुम को याद नहीं है, तुम इस स्थान में बन्दी के समान हो। उदयपुरी उस समय रोने लगी, और उस की आंखों से आंसू गिरने लग पड़े परन्तु यह उस की स्वयं अज्ञानता थी और वह व्यर्थ छेड़ छाड़ करके चंचल कुमारी की सभ्यता व सुशीलता से लाभ न उठा सकी। औरंगजेब की दशा अत्यन्त निकृष्ट हो गई, यहां तक कि खाद्य पदार्थों की न्यूनता से उस के मनुष्य दुःखी हो गये, और हाथी घोड़े केवल मरे ही नहीं, परन्तु बहुत

कुछ सम्पत्ति राजपूतों के हाथ लगी, उस ने दुःखित हो सन्धि करनी चाही। राना ने अपने विशेष सरदारों को बुला कर उन से सम्मति ली। दयालशाह उस का प्रधान मन्त्री सन्धि नहीं चाहता था। क्योंकि औरंगजेब ने हिन्दुओं को बहुत सता रक्खा था। परन्तु राना राजसिंह अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष था। वह जानता था, औरंगजेब केवल आपदा के कारण सन्धि चाहता है और उसके वचन का कोई विश्वास नहीं, तब भी उस ने सन्धि करना उचित समझा। क्योंकि उदयपुर की प्रजा दुःखी हो गई थी।

जब सन्धि की सारी ऊंची नीची बातें स्वीकार कर ली गई, निर्मल कुमारी ने विचार किया कि उदयपुरी के अभिमान को नीचा दिखाया जाय। उस ने बेगम के कान में झुक कर कहा—"बिना हुक्का भरे जाने की आज्ञा नहीं है।" उदयपुरी बेगम ने लाल पीली आंखें कीं और बोली चण्डालिन! तेरी जीभ कटवालूंगी, तनिक मुझे दिल्ली जाने दे, फिर मैं तुझ से और चंचल कुमारी से समझूंगी। चंचल कुमारी ने उस के कठोर शब्दों को सुन लिया। उस ने बेगम से कहा—"मैंने सुना है, महाराना ने बादशाह पर दया की है, तुम को हमारा यश मानना उचित है। कृतघ्नता का बड़ा दोष है, तुम तो हम लोगों की जीभ अवश्य कटवावेगी, उस समय देखा जायगा कि क्या हो सकता है, राना को बादशाह के छोड़

देने की सामर्थ थी, घर की (अर्थात् स्त्रियों की) अध्यक्ष मैं हूं, शाहजादी जेबउलनिसा को आज्ञा है, वह अब भक्त के साथ जायें, तुम को उस समय आज्ञा मिलेगी जब तुम हुक्का भर लाओगी।" जेबउलनिसा ने बहुत कुछ दीनता के साथ रानी को समझाया किन्तु वह हठी थी, उस ने कहा—कुछ बात नहीं, इस स्त्री के कारण दुःख उत्पन्न हुआ है और यही दुःखों का मूल है, इस से कहो चिलम तैयार करे, जब तक ऐसा न करेगी तब तक जाने की आज्ञा न दूंगी, आप जा सकती हो" निदान जब बेगम ने देखा कि वह किसी की सुनने वाली नहीं है, लाचार उस ने चिलम पर आग रक्खी और हुक्का दिया। चंचल कुमारी ने कहा—"देखा अब तुम्हारा साहस न पड़ेगा कि किसी को मूर्ख कहो अथवा हुक्का भरने की आज्ञा दो, अब शाहजादी जेबउलनिसा के साथ तुम को जाने की आज्ञा है। जो जी में आवे औरंगजेब से कहो, जो लड़की बादशाह की तस्वीर पर लात मारती है अथवा जो बेगम से चिलम भरवाने का अधिकार रखती है। वह संसार में महान् से महान् बल वाले का भय नहीं करती।" बेगम रोने लगी, जेबउलनिसा प्रसन्नता पूर्वक चंचल कुमारी से मिली और जब दोनों शाही खेमें में पहुंच गईं, उस समय कूच की आज्ञा सुनाई गई।

कुछ समय पश्चात् औरंगजेब ने सन्धि पत्र को फाड़

डाला और लड़ने की इच्छा की। जब राणा ने सुना, उस को क्रोध आ गया, वर्षों की लड़ाई से उस की सेना कम हो गई थी। राजस्थान के राजे उस की सहायता से घबराते थे। तिस पर भी उस ने किसी का भय नहीं किया और जब औरंगजेब उस पर चढ़ आया तो दुर्गादास राठौर केवल उस का सहायक था। औरंगजेब दुर्गादास के नाम से भय खाता था। वह कहा करता था, शिवा जी मरहटा कोई वस्तु नहीं है, यदि दुर्गादास मेरे अधिकार में आ जावे, तो हमें सदा के लिए आनन्द हो जावे। राना और दुर्गादास ने मिल कर उस समय में उसे बड़ी बुरी प्रकार परास्त किया और राजपूतों से इस समय भी लज्जा उठानी पड़ी। अन्त में सिर पीट कर फिर से उसे सन्धि करनी पड़ी।

चंचल कुमारी के विवाह से रूपनगर तथा उदयपुर दोनों मित्र बन गये और उन के बीच में प्रतिज्ञा हुई कि जब उदयपुर पर कोई शत्रु चढ़ेगा, तो वह दो सहस्र घोड़े से उस की सहायता करेगा, विक्रमसिंह स्वयं राना से मिला और चंचल कुमारी के विवाह को उस ने अपने वंश की बड़ाई समझी, पीढ़ियों की शत्रुता सदा के लिए भूल गए।

चंचल बड़ी पति भक्त और दीन स्त्री थी, राना की सेवा इस प्रकार करती थी, मानो उस की दासी थी। इन दोनों में अगाद प्रेम था। दोनों एक दूसरे के संग रहकर प्रेम तथा

आनन्द का जीवन व्यतीत करते थे, और उन्होंने शांति के साथ इस विचित्र असार संसार को त्याग किया।

हमारे पाठकगण! यह हिन्दुपन का अभिमान निश्चय अमूल्य सम्पत्ति है। जिन में स्वाभिमान और जातीयता का भाव होगा, इस संसार में क्या कोई भी शक्ति उन को हरा सकती है। हमारी क्या दशा है न नाम की लाज और न अपने मर्य्यादा का विचार, हम समझते ही नहीं कि किस काम करने से हमारा मान अथवा किस में हानि है। ईश्वर करे कि चंचल कुमारी का यह वृत्तान्त हम को स्वाभिमानता का पाठ सिखाये और हम में जातीयता का भाव उत्पन्न हो और अपने आप को मनुष्य कहलाने के योग्य बनें।



३—सुन्दर बाई।

धीर धरो धीरज करो, धीर हि सब ही बनाय।
माली सींचे वृक्ष को, ऋतु आये फल खाय॥

केसरीसिंह का घर बलभीपुर से कई कोस की दूरी पर था। यह सैला नामी तालुका का राजा था। सुन्दर बाई इस की कन्या थी। राजा ने बड़े प्रेम और आदर पूर्वक इस की पालना की थी। यह न केवल संस्कृत विद्या की पण्डिता थी, किन्तु न्यायशास्त्र के समझने में भी बड़ी चतुर थी। साहस युक्त विचारों में स्वतन्त्र, आत्मा की उच्च और सुन्दरता में अपनी उपमा नहीं रखती थी। जैसा उस का नाम था, वैसे ही हर बात में सुन्दर थी।

बालकपन की अवस्था में एक दिन वह सखियों को संग लेकर अपने पिता की वाटिका में आई और चुहल दिल्लगी करने लगी। सुन्दर बाई सजीवता रहित चित्त वाले मनुष्य को पसन्द नहीं करती थी इस कारण इस का समय विशेष कर हंसी खुशी की बातों में व्यतीत होता था। वाटिका की हरियाली देख कर उस की आत्मा प्रसन्न हो गई। उस के बीच में एक सुन्दर कोठी भी बनी हुई थी

जो समय के अनुसार सजाई हुई थी । कुछ समय तक सहेलियों ने वहां विश्राम किया फिर वाटिकों में वृक्षों के नीचे बैठ कर गाने तथा हंसी दिल्लगी करने लगी।

संयोग वश जिस समय वह आनन्द में मग्न थीं। बलभी पुर का राज-पुत्र शिकार खेलने के निमित्त बाहर निकला था। उसके साथी पीछे छूट गये थे, सूर्य की प्रचंड-किरणों की गर्मी से व्याकुल होकर वह केसरीसिंह भी वाटिका में आया और एक छायादार वृक्ष के तले जीन पोश बिछा कर लेट रहा। राजकुमारी और सहेलियां भी उसी वृक्ष के इधर उधर कहीं बैठी हुई प्रेम से गा रहीं थीं। स्त्रियों के शब्द में स्वभाविक आकर्षण होता है। वह रोक नहीं सका, आत्मा में इच्छा उत्पन्न हुई कि स्वयं भी गाने वालों के समूह में मिल कर आत्मा को प्रसन्न करें। इस विचार से वह दबे पांव उठा और वहां पहुंचा जहां यह सब गा रहीं थीं। उस ने देखा कि वह कुमारियों का समूह है । इस कारण उन के पास जाना अनुचित समझा और एक वृक्ष की आड़ में बैठ कर उन के गाने को सुनने लगा।

थोड़े समय पश्चात् गाना बन्द हो गया और हंसी के शब्द कान में पड़े, एक सखी ने कहा मेरा विवाह जिस पुरुष के साथ होगा उसे खूब नाच नचाऊंगी। पुरुष स्त्री को पांव की जूती समझते हैं, उन को यह ज्ञात नहीं कि स्त्री

न हो तो पुरुषों का कहीं पता भी न मिले" दूसरी बोली—"सखी यह सच है मैं तो बलभीपुर के राज-पुत्र के संग विवाह करूंगी और इस प्रकार उस को प्रसन्न करूंगी, कि वह केवल मेरा ही हो कर रहे, यदि उसने मेरी ओर कृपा नहीं की तो मैं बल तथा पराक्रम से उस को दिखा दूंगी कि स्त्रियां प्रत्येक बात में पुरुषों से बढ़ चढ़ कर होती हैं तब तो वह मेरा लोहा मानेगा, लज्जा कर मेरे कहनेमें रहेगा। तीसरी ने कहा "अरी राजकुमारी क्या कहती है क्या तेरे कारण बीरसिंह दूसरा विवाह भी न करने पावेगा।

बीरसिंह को आश्चर्य हुआ, उस ने जान लिया कि यह ठाकुर केसरीसिंह की राजदुलारी है। मेरा अब इस स्थानपर रहना उचित नहीं, यह सोच कर वह वहां से चल पड़ा। परन्तु चलते हुए वृक्ष की आड़ से सुन्दर बाई को देख लिया उस का मुख पूर्णमाशी के चन्द्रमा की तरह चमक रहा था और नख से शिख तक ऐसा प्रतीत होता था कि मानो सुन्दरता के सांचे में ढाल कर बनाई गई है। इस ने अधिक देर तक ठहरना उचित नहीं समझा। घोड़े के पास आ ज़ीन कसा और उस पर सवार हो कर वाटिका से बाहर निकल आया। अपने हृदय के विचारों को दृढ़ करने और मन के सन्देह निवारण के लिए उसने वाटिका के बाहर के मनुष्यों से पूछा "क्या वाटिका में राजा केसरीसिंह की पुत्री

आई हुई है ?" और जब लोगों ने कहा कि "हां वह आई हुई है, तो इसके मन में भी उस परम सुन्दरी के साथ विवाह करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

जब वह अपने घर वहां से लौट कर आगया तो अपने मित्रों के द्वारा अपने पिता की सेवा में यह प्रार्थना की कि केसरीसिंह की कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया जाय केसरीसिंह अच्छे कुल और वंश का राजपूत था। राजा ने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली। और अपने पुरोहित को इस शुभ कार्य के लिए केसरीसिंह के पास भेजा। उसने भी राजपुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह करना उत्तम समझा। थोड़े ही दिनों के पीछे धूम धाम से इन के विवाह की रीति पूरी की गई।

सुन्दरबाई बीरसिंह के भवन में आने को तो आगई। परन्तु बीरसिंह के हृदय में उस की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसने कहा—" देखूं यह किस तरह अपने वचन को सच्चा प्रमाणित करती है और इसी विचार से वह कभी सुन्दरबाई के समीप नहीं गया। वह अपने मन में व्याकुल थी कि इस का क्या कारण है कि मेरा पति मेरे भवन में कभी भूलकर भी नहीं आता। परन्तु असल कारण उसे मालूम न हो सका। विचारी विवश थी, कुछ कर भी नहीं सकती थी। उसने धैर्य और साहस के साथ किसी अच्छे

अवसर की प्रतीक्षा करनी आरम्भ की। राजकुमार की इस क्रिया से उस की सखी सहेलियां भी चिन्तत रहा करती थीं। परन्तु सुन्दरबाई ने किसी पर अपना हार्दिक शोक प्रगट नहीं होने दिया। और वह पूर्ववत आनन्दित दिखाई देती थी।

इस प्रकार के आन्तरिक शोक और दुःख में कई महीने व्यतीत हो गए। एक दिन प्रातःकाल के समय एक सहेली ने आकर कहा, "बाई जी! आज वार्षिक त्योहार है, यहां से थोड़ी दूर पर एक देवता का मन्दिर है, वहां पर बड़ा मेला लगता है। यदि आप की इच्छा हो तो आप भी चलें, नवीन दृश्य को देख कर चित्त में कुछ प्रफुल्लता आजायगी"। सुन्दर बाई ने कहा "बहुत अच्छा मैं चली चलूंगी" उसी समय से मन्दिर में जाने की तैयारी आरम्भ हो गई और प्रायः ६ बजे दिन के लग भग बड़ी धूम धाम से रानी की सवारी राज मन्दिर से बाहर निकली। बहुत से सैनिकों के अतिरिक्त उस ने अपनी सहेलियों को साथ ले कर मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। मन्दिर में रानी की पूजा करने का ऐसा प्रबन्ध किया गया, कि किसी भी पुरुष का वहां प्रवेश न हो और उन सब पुरुषों को जो वहां पहिले ही से थे बाहर निकाल दिया गया।

बीरसिंह का स्वभाव जितेन्द्री और धार्मिक था, अब

उस ने सुना कि सुन्दरबाई देव मन्दिर को गई है, तो वह भी अपने साथियों के साथ मेला देखने की इच्छा से वहां चला गया। वहां पहुंच कर उस की यह इच्छा हुई कि मन्दिर में सुन्दरबाई को पूजा करते देखे, रानी की पूजा के समय और किसी को मन्दिर में जाने की आज्ञा नहीं थी। चारों ओर सिपाहियों का पहरा खड़ा था। परन्तु वह राजकुमार था उस को कौन रोक सक्ता था ? वह बेधड़क उस स्थान में चला गया। जहां सुन्दर बाई बैठी हुई पूजा कर रही थी, बीरसिंह ने समीप जाकर उस की प्रार्थना के यह शब्द अपने कानों से सुने, वह देवता का ध्यान किए हुए इस प्रकार प्रार्थना कर रही थीः—"परमात्मन्! तू मेरे पति को सब प्रकार सुख प्रदान कर और उस की आयु में वृद्धि कर यह शब्द वह कह रही थी कि बीरसिंह वहां जा पहुंचा और इन शब्दों को सुन कर विस्मत रह गया। उस की आहट को सुन कर सुन्दरबाई ने सिर उठाकर पीछे देखा दोनों के नेत्र चार हुए। बीरसिंह ने उस समय यह कहा, "क्यों अब तक पति को बल और पराक्रम से नहीं जीता ? वाटिका की बात याद है कि नहीं ? पति के वचन सुन कर सुन्दरबाई कांप उठी। उस ने समझ लिया कि वाटिका में सहेलियों के साथ जो बात चीत हुई थी उस को सुन लिया है। और यही कारण है वह मेरे भवन में नहीं आता। उसने

हाथ बांध कर कहा–"प्राणनाथ! स्त्रियां मूर्ख होती हैं लड़क पन की बातें ऐसी हुआ ही करती हैं, आप ज्ञानवान हैं मुझे शिक्षा दे सकते हैं" ॥

वीरसिंह ने इसका उत्तर दिया "नहीं जब तक तुम अपने बचनों को सच्चा करके न दिखलाओगी तब तक मैं तुम्हारे मन्दिर में न आऊंगा" इतना कहकर वह वहां से चला गया और सुन्दरबाई चिन्ता सागर में डूब गई। सखियों में से किसी ने वीरसिंह की बातों को नहीं समझा और न सुन्दरबाई ने समझाने की कुछ आवश्यकता समझी। फिर उस ने अपने मन में यह विचार किया कि पति ने देवमन्दिर में ऐसी प्रतिज्ञा की है। इस लिये वह अब किसी अन्य प्रकार से मेरे मन्दिर में नहीं आवेंगे।

वह पूजा करके वहां से राजग्रह में लौट आई और कई दिन तक लगातार सोचती रही, कि किस प्रकार पति के हृदय पर यह विश्वास जमा दे कि वह बल पराक्रम में किसी प्रकार उस से कम नहीं है। परन्तु यह बात सहज न थी। कोई उपाय समझ में नहीं आता था उधर पति का वियोग नहीं सहा जाता था। निदान सोच समझ कर उस ने अपने मन में ठान ली कि राज मन्दिर से बाहर रहकर अवसर को ताकना चाहिए। परमात्मा कभी न कभी आप ऐसा अवसर प्रदान करेंगे, कि वह अपनी श्रेष्ठता को सत्य प्रमाणित कर सकेगी।

मन्दिर से लौट आने के पांचवें दिन के पीछे उस ने अपने पिता को पत्र लिखा और हाथ की वह अंगूठी जो केसरीसिंह ने विवाह के दिन दी थी निकाल कर और उसे अपनी दासी को देकर कहा "सखी ! तू यह अंगूठी मेरे पिता को जाकर देदे और उन से बिनती कर कहना कि यह बिगड़ गई है, इस को खोलकर फिर बनवा दें और मेरे पास भेज दें।

सखी अंगूठी लेकर रवाना हुई और राजकुमारी के पिता के नगर में पहुंच कर उन से मिली और अंगूठी दे कर सन्देशा कहा। "केसरीसिंह ने अंगूठी देखते ही जान लिया कि मेरी कन्या पर कोई विपद् आई हुई है, उस ने उस दासी को पुरस्कार में धन पदार्थादि देकर विदा किया और आप एकान्त में जाकर अंगूठी के नगीने को खोला उस के भीतर एक चिट्ठी लिखी हुई रक्खी थी। केसरीसिंह ने उस चिट्ठी को पढ़ा उस में यह लिखा हुआ थाः—

पिता जी यदि मैना व तोता बोलते न होते तो वह कभी पिंजरे में न रक्खे जाते। मैंने एक दिन वाटिका में अपनी सखियों से कहा था कि यदि वीरसिंह का मेरे साथ विवाह हुआ तो मैं अपना बल और प्राक्रम दिखा कर उनको मोहित रक्खूंगी राजकुमार वाटिका में आए हुए थे उन्हों ने मेरी बात चीत सुन ली थी। और अब उस की परीक्षा करने पर डटे हुए हैं। इस बात के लिखने की आवश्यकता नहीं कि मैं बहुत दुःख में

हूं। आप मेरे लिए एक अच्छा ज़िरह*बकतर और एक अच्छा असील घोड़ा इस प्रकार से भेज दें, कि किसी को कानों कान सूचना न हो, इस के पश्चात् जो कुछ करना होगा, वह मैं आप कर लूंगी। सारी बात ईश्वर की दया पर निर्भर है।

आप की दुःखी पुत्री—

सुन्दरबाई

इस पत्र को पढ़कर केसरीसिंह चिन्ता-सागर में डूब गया, घोड़ा और ज़िरह बकतर दोनों भेजे जासके हैं, परन्तु कठिनता यह है, कि किसी को सूचना न हो यह क्योंकर सम्भव है। निदान बहुत सोच विचार के अनन्तर उसने बलभी पुर की एक पहाड़ी से सुन्दरबाई के भवन तक सुरंग खुदवाना आरम्भ किया। इस कार्य्य में उसका बहुत सा धन व्यय हो गया। परन्तु लड़की की मर्य्यादा के सुरक्षित रखने के लिये उस ने कुछ भी आगा पीछा न किया।

जब सुरंग बन कर तैयार हो गई, तो उस ने एक असील घोड़ा और अच्छी ज़िरह बकतर सुन्दरबाई के पास भेज दिया। सुन्दरबाई घोड़े और जिरह बकतर को पाकर पिता की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुई, और अपनी सहेली को पास बैठा कर बीरसिंह के सम्पूर्ण वर्ताव का वृत्तान्त कह सुनाया। और उस को इस बात से खूब सचेत किया, कि मेरे

* जिरह बकतर अर्थात् सन्नाह संजोवा।

भवन से बाहर निकलने का वृत्तान्त किसी पर कभी विदित न होने पावे। और यह काम कुछ कठिन नहीं है, क्योंकि वीरसिंह के अप्रिय भाव को देखकर किसी को मेरा ध्यान नहीं है। और यदि तू बुद्धिमत्ता से काम लेगी तो किसी को भी मेरे जाने का पता न लगेगा।

यह कह कर उस ने पुरुषों का वेष पहिन लिया और घोड़े पर सवार होकर सुरंग की राह से बाहर निकली। दूसरे दिन बलभीपुर के दरबार में एक सुन्दर और वीर नव-युवक राजपूत नौकरी की खोज में उपस्थित हुआ और बड़े अच्छे ढंग के साथ राजा से भेंट की। सब लोग इस के आचार व्यवहार को देखकर प्रसन्न हुए। राजा ने आश्चर्य्य से पूछा– "तेरा नाम क्या है? और किस का लड़का है?"

इस ने उत्तर दिया " महाराज! मेरा नाम रत्नसिंह है। और मैं एक राजा का पुत्र हूं। किसी बात पर घर से क्रोधित होकर यहां चला आया हूं। और मन में शपथ की है, कि अपने पिता तथा देश का नाम न बताऊंगा, और न इस की आवश्यकता है। आप को अनुभव से ज्ञात हो जायगा, कि मैं बड़ा साहसी हूं। जो काम किसी से न होगा, उसे मैं कर दिखाऊंगा। विशेष कर शत्रुओं के साथ युद्ध के समय आप रत्नसिंह को अपने सरदारों में सब से आगे पावेंगे।

राजा ने नव-युवक राजपूत के बांकपन और उस की

निर्भीक वक्तृता को पसन्द किया। और उस को दरबार में पदवी दी गई, और आज्ञा हुई कि कभी २ वह नमस्कार के लिए दरबार में आया करे। रत्नसिंह ने यह स्वीकार कर लिया

वीरसिंह ने जिस समय से इस नव-युवक राजपूत को देखा उसी समय से उस का प्रेमी बन गया। रत्नसिंह ने राजा के पास अपने आप को राजकुमार बताया था, इसलिए राजा ने इस को वीरसिंह के साथ रहने की आज्ञा दी। यह दोनों उसी दिन से सच्चे-मित्र बन गये और वीरसिंह ने अपनी कोठी के समीप एक बंगला उस के रहने के लिए खाली करा दिया।

रत्नसिंह सचमुच शान्त स्वभाव, साहसी और योद्धा था। उस के स्वभाव में एक बहुत बड़ी विशेषता यह थी, कि उस को क्रोध नहीं आता था। जब दोनों राजकुमार आखेट में जाते उसका घोड़ा सदैव सब से आगे रहा करता था, और उस की वीरता और साहस को देखकर सब दङ्ग रह जाते थे।

यह रत्नसिंह कोई और मनुष्य नहीं था, यह स्वयं सुन्दरबाई इस की विवाहिता स्त्री थी। परन्तु इस ने ऐसा भेष बदल रक्खा था कि बीरसिंह और उस के साथियों के मन में किंचित मात्र भी संदेह नहीं हुआ। और यह इतना अधिक उस के साथ प्रीति करने लगा कि दोनों मित्र एक क्षण के लिए पृथक नहीं होते थे।

जब बीरसिंह रत्नसिंह को अपनी रानी सुन्दरबाई के मिथ्या अभिमान और बहुत बढ़ कर बातें मारने का वृत्तान्त सुनाता तो रत्नसिंह हंस कर कहा करता "तुम ने सुन्दरबाई के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया"। राजकुमार कहता "नहीं मैं सुन्दरबाई को दिल से चाहता हूं-और उस के सिवा और किसी से विवाह न करूंगा, परन्तु इस बात की परीक्षा करना चाहता हूं कि वह किस प्रकार मुझ पर अपने बल और पराक्रम को प्रगट करती है ? यदि वह राजपूतनी है तो अपनी बात को सच कर दिखाएगी"। मैं उस का कुछ बुरा चाहने वाला नहीं हूं। रत्नसिंह खिलखिला कर हंस देता था।

इसी प्रकार उन के दिन हंसी खुशी में व्यतीत होते जाते थे। एक दिन एसी घटना हुई कि किसी पराक्रमी सिंह ने बलभी पुर के निकट अपनी गुहा बनाली। और प्रतिदिन एक दो मनुष्यों का बध करने लगा। बड़े बड़े योद्धा उस की ताक में रहते थे, परन्तु सिंह किसी के वश में नहीं आता था। जब राजा की प्रजा बहुत पीड़ित होगई, तो उस ने एक दिन रत्नसिंह की ओर दृष्टि की। उस ने उठ कर प्रणाम करके प्रार्थना की, "मैं महाराज की सेवा करने के लिये उपस्थित हूं परन्तु मुझ में एक दोष है, जिस को मैं श्रीमान् की सेवा में वर्णन करना भूल गया था। मैं जहां अपनी तलवार पर भरोसा रखता हूं, वहां उपाय से भी काम लिया करता हूं। आप किसी शिल्प-

कार को आज्ञा दें, कि वह लोहे का मनुष्य बनावे और आवश्यक बातें मैं उसे समझा दूंगा और उस की सहायता से बात की बात में सिंह को मार डालूंगा।

राजा ने ऐसा ही किया। लोहे का एक खोखला मनुष्य तैय्यार किया गया। उस के हाथ पांव और सम्पूर्ण शरीर में लोहे की नोकदार श्लाकें लगी हुई थीं। रत्नसिंह इस लोहे के मनुष्य को नगर के बाहर उस स्थान पर लाया, जहां सिंह मनुष्यों का शिकार किया करता था। उस को खड़ा करके आप भी उस के भीतर छिप रहा।

रात के समय आहार की खोज में सिंह अपनी गुहा से बाहर निकला, रत्नसिंह ने उस की आहट पाकर ललकारा, सिंह शब्द सुनते ही मारे क्रोध के पेट के बल उस लोहे के मनुष्य पर टूट पड़ा और लोहे की श्लाकें सारे शरीर में घुस गईं। रत्नसिंह भी तलवार लेकर बाहिर निकला और एक ही वार से उसका सिर धड़ से पृथक कर दिया।

जिस समय उस ने सिंह का बध किया था, उस समय रात बहुत शेष थी। इस लिये रत्नसिंह उस की लाश को उठवा कर अपने बंगले पर ले आया। और खाट के समीप डालकर गहरी निद्रा में सो रहा।

वीरसिंह को भय था कि मेरा मित्र सिंह के हाथ से मारा न जाय। दूसरों के मन में भी इसी प्रकार की शंका थी।

बीरसिंह सब से पहिले उठकर उस के बंगले पर आया, नौकरों ने कहा " सरदार अभी सो रहे हैं" । वीरसिंह ने कहा " कुछ हानि नहीं" उन्हें जगादो। रत्नसिंह उसका शब्द सुन कर स्वयं उठ बैठा, और बीरसिंह के आने से डरा, कि कहीं ऐसा न हो कि भेष बदलने का भेद खुल जाय । वह मिलने से पहिले दूसरे कमरे में चला गया, और नहा धोकर वीरसिंह से मिला ।

जब राजकुमार ने सिंह को खाट के समीप देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उस ने रत्नसिंह की ओर प्रीति से देखकर साधुवाद दिया । अभी वह परस्पर बात चीत कर ही रहे थे कि रत्नसिंह को बुलाने के लिये एक राजा कर्मचारी आया ।

रत्नसिंह सिंह के मृत-शरीर को अपने साथ लेकर राजा के दरबार में गया। सिंह अपने डील डौल और दीर्घ काया वाला होने के कारण पूर्णतः निराला था। सब ने रत्नसिंह की बीरता की प्रशंसा की । राजा ने कृतज्ञता के प्रकाश में अपनी अंगूठी उतार कर रत्नसिंह को पुरस्कार में दी और उस के साहस की प्रशंसा की ।

जिस दिन से उस ने सिंह का बध किया उस दिन से सारे बलभीपुर के निवासी उस विशेष प्यार करने लगे । राजा उस पर सब दरबारियों से अधिक कृपा दृष्टि रखता था, और रत्नसिंह के आचरण इस प्रकार के थे कि

किसी को भी उस के साथ ईर्षा और शत्रुता नहीं थी। अभी इस को आए थोड़े ही महीने बीते थे, कि बलभीपुर के राजा ने उस को भूमि और अन्य पुरस्कार देकर अपना विश्वस्त मंत्री बनाया, और वीरसिंह भी पहिले से अधिक उसे प्यार करने लगा।

बलभीपुर का राजा एक बार शिकार के लिए वन की ओर रवाना हुआ, रत्नसिंह भी उस के साथ था। राजा को शिकार खेलने की अधिक रुचि थी। देश में सब प्रकार से सुख और शांति थी, बहुत दिनों तक वह सैर व शिकार में लगा रहा इस का परिणाम यह हुआ कि एक समीप के राजा ने गुप्तचरों द्वारा पता पाकर उस की अनुपस्थिति में राजधानी पर आक्रमण कर दिया। वीरसिंह बीमार था, इसी कारण शिकार में भी नहीं गया था। शत्रुओं ने बलभीपुर को विजय करने के साथ ही वीरसिंह को भी कैद कर लिया। यह काम उन्होंने कुछ ऐसी शीघ्रता के साथ किया और बलभी पुर पर अपना अधिकार जमा लिया कि बुद्धि चकित होती थी। सब ओर समय समय पर उनके चौकी पहरे बैठ गये।

जब राजा को पता मिला तो वह बहुत दुःखी हुआ। रत्नसिंह से कहने लगा "मेरा प्यारा पुत्र रोगी था, शत्रुओं ने उसे अवश्य हानि पहुंचाई होगी। उस के बिना मेरा जीवन वृथा है। यदि वह मुझे जीवित मिल जाय तो राज का लेना मेरे लिए कुछ भी कठिन न होगा।

रत्नसिंह ने उत्तर दिया, "महाराज वीरसिंह मेरा परम मित्र है, मेरे प्राण प्रत्येक समय उस पर न्योछावर होने के लिए तैयार हैं, मैं ऐसा यत्न करूंगा कि उस को किसी प्रकार से हानि न पहुंचे। और यदि शत्रुओं ने उसको हानि पहुंचाई तो रत्नसिंह भी आग में जल कर मित्र का साथ देगा, आप परमात्मा के भरोसे पर धैर्य्य रक्खें। मैंने अपने दूतों को भेज कर पता लगा लिया है कि वह किले में कैद है। ईश्वर ने चाहा तो मैं शीघ्र ही शत्रुओं से आप का बदला ले लूंगा।

अभी यह बात चीत हो रही थी कि एक और दूत ने आकर सूचना दी कि वीरसिंह ने अवसर पाकर कई मनुष्यों को मार डाला था। इस लिए अब उस को जंजीरों में जकड़ कर एक कोठरी में पशुओं की भांति कैद किया गया है। यह सुनते ही रत्नसिंह की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। उस ने राजा से कहा, इसी समय चढ़ाई करने की आज्ञा दीजिये मैं शत्रुओं को परास्त करूंगा।

राजा बोला "पुत्र! इतने सैनिक कहां हैं? कैसे तू चढ़ाई करेगा?" रत्नसिंह ने कहा "आप मुझ पर विश्वास कीजिये और सीता ग्राम की ओर से चलिये। हम केसरीसिंह से सहायता लेंगे और आप देखेंगे कि रत्नसिंह किस प्रकार आप के लिए प्राण देता है।

कहने की देर थी राजा अपने सिपाहियों को लेकर

सीता ग्राम की ओर चला। सबसे पहिले रत्नसिंह का असील घोड़ा सरपट चाल चलता हुआ दिखाई दिया, और सब आदमी पीछे रह गये। यह हाथ में भाला लिये हुए केसरीसिंह के किले में पहुंचा और कहने लगा। "राजन्! ज़िरह बकतर वाला सवार अंगूठी के पत्र की निशानी देकर आपसे प्रार्थना करता है कि चुने हुए राजपूतों की सेना लेकर मेरे साथ चलिये।" केसरीसिंह को इतना अवसर नहीं दिया गया कि वह अधिक बात चीत करता उसने उसी समय अपने सैनिकों को अस्त्र शस्त्र बांधने की आज्ञा दी। और चुने हुए राजपूत योद्धा शहसवार के पीछे वहां पहुंचे जहां सुन्दर बाई के लिए सुरंग खोदी गई थी। रत्नसिंह ने बलभीपुर के राजा से सम्बोधन करके कहा "आप की भलाई इसी में है कि आप मुझ पर विश्वास करके जो कुछ मैं कहूं आप वही करें। यह सुरंग आपके किले में गई है, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है जिस से आप अपने महल में पहुंच सकें। वहां पहुंच कर शत्रुओं को परास्त कर लेना केवल घण्टों का काम होगा।

राजा हैरान था कि यह अद्भुत शक्ति का मनुष्य है, मुझ को तो सुरंग का पता नहीं यह कैसे जानता है कि यह सुरंग मेरे किले में गई है। परन्तु रत्नसिंह इस के विश्वास का पात्र बन चुका था। इस लिए अधिक वाद विवाद करना

अनुचित समझ वह उसके साथ सुरंग की राह से किले की ओर चल पड़ा। सुरंग का द्वार खास सुन्दरबाई के भवन में था, जब यह सब वहां पहुंच गये तो रत्नसिंह ने सब की गणना की। फिर उन को चार भागों में बांट कर पचास पचास सवार बलभीपुर के राजा और उसके सेनापति और केसरीसिंह की अध्यक्षता में दिये और अपने लिए केवल पचास सैनिक रक्खे। इस ने खड़े होकर सब को सूचना दी कि किस किस प्रकार कहां २ और किस किस अवसर पर शत्रु को परास्त करना चाहिए। और तब तीन दल तीन ओर को रवाना हुए। यह स्वयं अपने मनुष्य लेकर वहां आया जहां वीरसिंह कैद था।

शत्रु असावधान थे, सारे नगर पर अधिकार हो गया था, किले की दीवारों पर चौकी पहरे का अच्छी प्रकार प्रबन्ध था उन्हें क्या पता था कि पांव के तले की धरती से शत्रु उत्पन्न होंगे और हमारा सर्वनाश करेंगे। रत्नसिंह के सिपाहियों ने पहुंचते ही शत्रुओं के सिपाहियों को जो पहरा दे रहे थे बध करना आरम्भ किया। जब सब सिपाही मारे गये रत्नसिंह उस जगह जा पहुंचा, जहां जंजीर में जकड़ा हुआ वीरसिंह पड़ा था। उसने पहुंचते ही उस की हथकड़ी बेड़ी काट दी और कैद से छुड़ा दिया। यह दोनों मित्र उस समय जिस प्रीति से मिले उसका वर्णन करना कठिन है।

अधिक बात चीत करने का समय नहीं था, रत्नसिंह ने कहा "आप के पिता पूर्व की ओर लड़ रहे हैं यह मेरा घोड़ा ले लो और उनकी सहायता पर जावो, मैं फिर आप से मिलूंगा"। वीरसिंह घोड़े की पीठ पर सवार हो गया और थोड़े ही समय में पिता के पास पहुंचा राजा ने यहां शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे, या तो वह मारे गये अथवा कैद कर लिये गये थे। यही दशा अन्य स्थानों की भी हुई थी, थोड़ी देर में सारे का सारा किला राजा के अधिकार में आगया। जब राजा ने वीरसिंह को देखा तो कहने लगा "तुम अब तक कहां थे और अब कैसे आगये?" वह कहने लगा "मैं बहुत थका मांदा हूं, इतनी सामर्थ्य मुझ में नहीं है कि सारा वृत्तान्त वर्णन कर सकूं, रत्नसिंह जब आवेगा तो उस के सामने सारा हाल कह सुनाऊंगा। आप यह समझ लेवें कि उसने मेरे प्राण बचाये हैं। शत्रुओं ने मुझ को इस प्रकार जकड़ रक्खा था कि मैं कठिनता से दो चार घण्टे और जी सकता था"।

राजा बोला "रत्नसिंह अद्भुत शक्तिशाली है उसने एक बार मेरी प्रजा की रक्षा की, दूसरी बार राजकुमार के प्राण बचाये और मेरा राज्य मुझे वापिस दिलाया।

जब यह बातें वहां हो रही थीं, रत्नसिंह सारे किले में अपना चौकी पहरा बैठा कर वहां आ पहुंचा। राजा उस को

देख कर धन्यवाद देने लगा, और चाहा कि उसे छाती से लगा ले। रत्नसिंह दो चार कदम पीछे हट गया और कहने लगा "कृपानिधान ! मैं आप का और राजकुमार का दास हूं, इतनी कृपा आप की क्या कम है कि आप मुझको भला मनुष्य समझते हैं। मैं तो आप का एक तुच्छ सेवक हूं। मैंने विनती की थी कि लड़ाई के कारण अपना घर छोड़ रक्खा है, अब परमेश्वर की कृपा से मेरे अच्छे दिन फिरे हैं, घर से सन्देशा आया है, पिता ने बुलाया है, इस लिए आप छुट्टी देवें, इतनी ही आप से प्रार्थना है।

राजा ने कहा—" मैं एक क्षण के लिये भी तुझ को अपने नेत्रों से ओट करना नहीं चाहता। तेरे माता पिता धन्य हैं, जिन्होंने ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न किया"। वीरसिंह प्यार से कहने लगा " हमारी मित्रता अटल रहेगी। तुम ने मेरी जान बचाई है, आज से यह जान तुम्हारी कहलाएगी, मैंने आज तक इतना सच्चा-मित्र नहीं देखा था। लो यह कटार मैं अपने प्रेम की निशानी तुम को देता हूं। यह उपहार रूप में अपने पास रक्खो और जब तुम पर कोई विपत्ति आवे, मैं सदैव हर समय तुम्हारी सहायता के लिए उपस्थित रहूंगा।

रत्नसिंह ने वीरसिंह से कटार हाथ में ले ली और सिर झुकाकर कहा—" आप लोगों की इच्छा पूर्ण हो"।

वह दिन बात चीत में इसी प्रकार व्यतीत हुआ और

रत्नसिंह ने आस पास के ज़मीदारों के पास सन्देशा भेजा कि कल अपने २ मनुष्य लेकर राजा की सहायता के लिए आजावो, इस चतुरता का कारण यह था कि यद्यपि दुर्ग पर राजा का अधिकार हो गया था। परन्तु शत्रु नगर में डटे हुए थे।

दूसरे दिन जैसी कि आशा थी, शत्रुओं ने फिर किले पर धावा किया। राजा ने उस दिन रत्नसिंह को सेनापति नियत किया। अब सेना में चार सरदार थे, रत्नसिंह, बलभीपुर का राजा, केसरीसिंह और वीरसिंह।

जब यह साथ साथ बैठे थे, राजाने कहा—"मेरे पास सेना बहुत थोड़ी है, नगर वालों से बिलकुल इस समय आशा नहीं की जा सकती"। रत्नसिंह ने हंसकर उत्तर दिया "महाराज यह हर्ष का विषय है कि नगर शत्रुओं के हाथ में है, इससे उन का पक्ष दुर्बल हो जायगा। आप कुछ भी चिन्ता न करें, मुझको ईश्वर ने आप की सहायता के लिए भेजा है, देखिये मैं किस प्रकार उन दुष्टों को दण्ड देता हूँ"।

शत्रुओं ने दुर्ग पर धावा किया, उन के पास सेना अधिक थी, इस ओर सिपाही थोड़े थे, शत्रु के गुप्तचरों को राजा की सेना की संख्या की पूरी २ जांच थी। उन्हें विश्वास था कि अन्त में दुर्ग उन के हाथ आजायगा। इस कारण से उनके साहस में कुछ भी न्यूनता नहीं हुई थी। वह दुर्ग पर

पर चढ़ दौड़े। रत्नसिंह को किले के भीतर बन्द होकर लड़ने से घृणा थी। उस ने राजा से कहा–" यह मृत्यु और जीवन का समय है, आप बाहर चल कर शत्रुओं का सामना कीजिए।

परन्तु राजा ने कहा "नहीं ऐसा नहीं करना चाहिए" रत्न-सिंह ने कहा " बहुत अच्छा जैसी आप की आज्ञा, मुझ में कदाचित् सेनापति होने की योग्यता नहीं है, इसलिए आप ने मेरे परामर्श को स्वीकार नहीं किया "।

राजा दिल में लज्जित हुआ, निदान उसने दुर्ग का द्वार खोलने की आज्ञा दी, उस की आज्ञा से द्वार खोल दिया गया। वीर राजपूत लड़ने के लिए बाहर निकले। लोहे से लोहा बजने लगा। वह मार धाड़ हुई कि जिस का अन्त नहीं। दोनों ओर क्षत्री श्रेष्ठ थे, दोनों को मैदान छोड़ कर भागने से लज्जा थी। परन्तु बलभीपुर के राजा के पास सेना बहुत थोड़ी थी, उस के बहुत से मनुष्य मारे गये। निकट था कि शत्रु इस पर विजय पाते कि इतने में पीछे की ओर से बहु संख्या में सवारों ने आकर धावा किया और राजा के शत्रुओं को मारने लगे, जब यह दोनों ओर से घिर गये और उन पर कठिन मार पड़ने लगी, वह व्याकुल होकर एक ओर को भाग निकले और विजय बलभीपुर के हाथ रही। रत्नसिंह ने राजा की रकाब चूम कर उसे बधाई दी और बताया कि

जो दल पीछे से सहायता के लिए आया था। वह आप के प्रान्त के सरदारों का था, मैंने कल सायंकाल को उनके पास सहायता के लिए सन्देशा भेज दिया था, मैं सेनापति होने के योग्य नहीं हूं, इसलिए क्षमा चाहता हूं। अब आप इन अतिथियों के आदर सम्मान का प्रबन्ध करें, ताकि यह प्रसन्न हों, और आप धैर्य रक्खें कि शत्रु कभी आप का सामना करने का साहस न करेंगे।

इतनी बात कह कर उत्तर की अपेक्षा किए बिना रत्न-सिंह दुर्ग की ओर चला आया, और लोगों के देखते देखते अलोप हो गया। राजा ने वीरसिंह से कहा "यह रत्नसिंह पता नहीं कौन मनुष्य है, जिस ने इस प्रकार से सहायता की। उसने सुरङ्ग के मार्ग का हाल कैसे जान लिया यह बड़ा अचम्भा है। वीरसिंह स्वयं विस्मय में था, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

जब सब प्रकार से शत्रुओं का भय जाता रहा, रत्नसिंह की खोज की गई, परन्तु वह नहीं मिला, बंगले की ओर मनुष्य भेजे गये वहां भी पता नहीं था, कुछ मनुष्यों ने कहा "हमने उसको सुन्दरबाई के भवन की ओर जाते देखा है"।

मनुष्य के हृदय का विश्वास न करना चाहिए, जब वीरसिंह ने सुना कि वह सुन्दर बाई के भवन की ओर गया है, तो उसके मन में भिन्न २ विचार उत्पन्न होने लगे। उस

ने सोचा कौन जाने सुन्दर बाई धर्म से पतित हो गई हो, और यही कारण रत्नसिंह के सुरंग के मार्ग के जानने का होगा, उसी समय उसके मन में शत्रुता की आग भड़क उठी नंगी तलवार लिए हुए क्रोध से थर २ कांपता हुआ, अपनी स्त्री के भवन में आया, सुन्दर बाई उसके सन्मान के लिए नम्रता पूर्वक उठ कर खड़ी हुई।

वीरसिंह ने कहा—"दुष्टपापिनी रत्नसिंह कहां है?"

सुन्दरबाई ने हाथ जोड़कर कहा—"प्राणपति ! आप किस रत्नसिंह के विषय में पूंछते हैं?"

वीरसिंह—"वह रत्नसिंह जो मेरा मित्र बना था और जिस ने सुरंग की राह से आन कर मेरी जान बचाई थी। उस का तत्काल पता बतादे, यह तलवार अभी उसका सिर धड़ से पृथक कर देगी"।

सुन्दरबाई— 'प्राणनाथ ! जिसने आप के प्राण की रक्षा की थी, उसको इस सेवा का यही पुरस्कार मिलना चाहिए?'

वीरसिंह—"राक्षसी स्त्री ! व्यर्थ बात चीत न कर तुरन्त बता दे कि उस को कहां छिपा रक्खा है?"

सुन्दरबाई—"यह आप कहते क्या हैं, क्या सुन्दरबाई को आपने इतना पतित समझ लिया है?"

वीरसिंह—"अधर्मिणी ! तू विवाद बहुत करना जानती है, मैंने सुन रक्खा था कि तूने तर्क शास्त्र पढ़ा हुआ है, इस

तर्क शास्त्र ने तेरा सत्यानाश कर दिया । यदि शीघ्र नहीं बताती तो तेरा ही इस खड्ग से बध कर डालूंगा "।

वीरसिंह क्रोध के बस होकर अपनी कटार निकाल ली और सुन्दर बाई की ओर झपटा, सुन्दर बाई ने कहा— "यह सिर तो आप ही का है, जिस समय चाहिए उतार कर रख दीजिए, परन्तु इस खड्ग से मुझको न मारिए, मैं एक और कटार आप को देती हूं, उस से मेरा वध कीजिए। आप के हाथ से मरने में मुझे सुख मिलेगा। परन्तु पहले भली प्रकार से सोच विचार लीजिए कि आप क्या कर रहे हैं? और ध्यान से देख लीजिए कि मेरी आकृति आप के मित्र से मिलती है या नहीं ?"

रानी ने कटार वीरसिंह के हवाले की। उसने सुन्दर बाई को ध्यान से देखा, वाटिका और मंदिर की याद आई। उस के मुंह से स्वभाविक यह शब्द निकले।

" सच्ची सती ! पवित्र देवी ! मैंने महा अनर्थ किया " और यह कहकर वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। सुन्दरबाई ने पति को उठाकर पलंग पर लिटा दिया, मुंह पर गुलाब के छींटे दिये गये। बहुत देर के पश्चात् उसकी मूर्छा दूर हुई। यह आश्चर्य से इधर उधर देखने लगा। 'सुन्दरबाई तू कहां है। सुन्दरबाई बोली महाराज ! आप के पास बैठी हूं।"

वीरसिंह—"प्यारी क्या तू मेरे अपराध क्षमा कर देगी।

सुन्दरबाई—"महाराज! आप ने कुछ अपराध नहीं किया आप मेरे पति हो, मेरे स्वामी और प्राण-नाथ हो। आप ने दया की जिससे मेरी बात रह गई"।

वीरसिंह शक्ति हीन हो गया था। वह उठा और उस सति के चरणों की ओर हाथ बढ़ा कर उन्हें स्पर्श करना चाहा। सुन्दरबाई ने कहा, "महाराज मुझको पाप का भागी न बनाओ"। फिर स्त्री पुरुष दोनों ने एक दूसरे को हृदय से लगा लिया और वीरसिंह सच मुच उस दिन से उसका दास बन गया।

जब राजा ने सुना कि उस के बेटे की जान बचाने वाली स्वयं उस की बहू है तो उस के आनन्द की कोई सीमा न रही। वह स्वयं सुन्दर बाई के भवन में आकर कहने लगा। "पुत्री तू धन्य है। तू सच्ची राजपूतनी है। क्या तू अपने पिता को वह वृत्तान्त सुनावेगी, जिस के कारण तूने यह भेष बनाया था?

सुन्दरबाई ने उत्तर दिया "क्यों नहीं, महाराज की आज्ञा सिर और नेत्रों पर, आज सायंकाल के समय जब हमारी माता जी और दूसरे लोग आजायेंगे मैं सब के सामने सारा वृत्तान्त वर्णन करूंगी"।

जब सायंकाल का समय हुआ तो वीरसिंह की माता, अन्य रानियां, और 'केसरीसिंह' और बलभीपुर का राजा

सब एकत्रित हुए। और तब उनके सन्मुख सुन्दरबाई ने अपना हाल वर्णन करना आरम्भ किया, और आदि से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। केसरीसिंह ने अंगूठी से चिट्ठी निकालने और सुरंग बनवाने और कवच* धारी सवार की प्रार्थना पर सहायता देने की साक्षी दी। बूढ़ा राजा अपने आनन्द के वेग को थाम न सका।

उस ने सब के देखते हुए प्रेम की तरंग में सुन्दरबाई के सिर को चुम्बन किया, और कहने लगा, पुत्री तेरे माता।पिता को धन्यवाद है, बलभीपुर का वंश धन्य है, जिस में तेरा विवाह हुआ है। उस दिन से सुन्दरबाई का नाम सुन्दर देवी पड़ गया"।

इस घटना के सौ डेढ़सौ वर्ष पीछे के समय तक जब राजपूत शीत के दिनों सायंकाल के समय आग तापने के लिए बैठते तो बीरसिंह और सुन्दरदेवी की कथा बड़े चाव से कहते। स्त्री पुरुष दोनों इस से बल पराक्रम, पतिव्रत भाव, सचाई और बुद्धिमत्ता की शिक्षा लाभ करते।

अब न वह बलभीपुर रहा, न कहने सुनने वाले ही रहे, कितने दिनों के बाद इक पुस्तक के पढ़ने वालों को सुन्दरबाई का वृत्तान्त मिलेगा।

अब न वह दिन हैं और न वह रातें।
रह गईं यादगार यह सब बातें।

---

* ज़िरह पोश।

४—दुर्गा ।

पतिव्रता के साथ में, सिद्धि शक्ति अपार ।
पतिव्रता के तेज को, कोई न सके सहार ॥१॥
पतिव्रता के तेज का, क्या कोई करे अनुमान ।
कहने में आवे नहीं, देख ही परमान ॥ २ ॥
घट में औघट पाइया, औघट मांही घाट ।
कहे कबीर परिचै भया, देखी पति की बाट ॥३॥
सूर्य्य नहीं चन्दा नहीं, नहीं गगन आकाश ।
वह कुछ अद्भुत वस्तु है, जा मे प्रेम प्रकाश ॥४॥
सती चिता पर बैठकर, अङ्ग अङ्ग जरि जाय ।
कबीर क्या थी क्या भई, अब कुछ कही न जाय ॥५

दुर्गा बून्दी के राजा अजीतसिंह की धर्म्म-पत्नी और जयपुर नरेश की कन्या थी, सुन्दर, कोमलाङ्गी, धर्म्म-परायण, उन्नत चित्त और आत्म-सन्मान आदि सब गुणों यह रानी विभूषित थी। जब से यह बूंदी विवाह कर आई अजीतसिंह को मानों

बहु-मूल्य रत्न मिल गया। स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे के सच्चे प्रेमी बने हुए थे। कोई नहीं कह सकता था कि इन में से कौन अधिक अनुरागी है। दोनों प्रेम और प्रीति के रूप बने हुए थे और एक क्षण का वियोग भी दोनों के लिए असह्य था। जो लोग इस प्रकार के सांसारिक प्रेम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वह भूल पर हैं। लौकिक हो अथवा पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम में भेद भाव नहीं रहता, जहां स्वार्थ-परता की जड़ कट गई हो वहां मोक्ष की अवस्था आ जाती है।

इन अर्थों में हम दुर्गा को जीवन-मुक्त कह सकते हैं क्योंकि इस के नीच भाव दमन होकर पति के प्रेम में स्वाहा हो चुके थे। इस का जीवन अपना नहीं, किन्तु पति के निमित्त था। इसका शरीर अपना नहीं परन्तु अजीत का था। वह पति को उसी अनुराग की दृष्टि से देखती थी जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है। इसकी सम्पूर्ण इच्छाएं, सम्पूर्ण कामनाएं पति के प्रेम को केन्द्र बनाकर उसी के चहुं ओर घूम फिर कर उसी पर बलिहार जाती थीं।

दुर्गा अपने पति से अति प्रसन्न थी और अजीतसिंह इस देवी को बहुमूल्य रत्न समझता था, और अपने सौभाग्य पर धन्य धन्य होता था। स्त्री पुरुष दोनों का जीवन स्वर्गीय जीवन था।

कहते हैं कि दुर्गा दान पुण्य बहुत किया करती थी।

और बूंदी के ब्राह्मण और निर्धन कंगाल उस को रात दिन आशीर्वाद देते रहते थे। अपने सम्बन्धी तथा प्रजा के लोग सब उसका सन्मान करते थे, राज काज के काम में उस का कोमल हाथ सब प्रकार की कठोरताओं को नम्र किया करता था और क्योंकि वह कछवाहा वंश की राजपूतनी थी, इस लिए प्रजा उस को कछवाही देवी कहा करती थी।

दुर्गा की एक छोटी बहिन थी, जिसका सम्बन्ध उदयपुर के राजा अमरसिंह के साथ हो चुका था। जब छोटी बहिन के विवाह का समय निकट आया, दुर्गा ने हाथ बांध कर अपने पति से कहा—"महाराज ! यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ दिन के लिए जयपुर हो आऊं, माता ने बुला भेजा है।"

अजीतसिंह ने हंस कर कहा—"जाओ आनन्द पूर्वक जाओ, परन्तु विवाह के पश्चात् तुम स्वयं चली आओगी अथवा मुझ को लेने के लिए आना पड़ेगा ?"

दुर्गा बोली—"विवाह हुआ नहीं, कि मैं तत्काल आप की सेवा में उपस्थित हो जाऊंगी। आप को कष्ट उठाने की आवश्यकता न पड़ेगी। दुर्गा जयपुर आई, आनन्द पूर्वक विवाह सम्बन्धी रीतियां पूरी की गईं। परन्तु होनी होकर रहती है। जब निकृष्ट दिन आते हैं, तो मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है। राना अमरसिंह बूंदी की स्त्रियों का रूप देख कर एक दिन राज दासियों से कहने लगा "बूंदी में सब से

अधिक रूपवती स्त्री कौन है?" दासियों ने कहा—"इस प्रश्न का उत्तर क्या दिया जाय, जिस राजकुमारी के साथ आप का विवाह हुआ है, वह किसी से कम सुन्दर नहीं है।"

राना ने कहा—"मालूम हो गया, उस से भी अधिक रूपवती स्त्रियां यहां होंगी, तुम मुझ को बता दो।" दासियों ने पहिले तो बहुत कुछ आगा पीछा किया, परन्तु जब राना की आग्रह सीमा से बढ़ गई तो एक ने हंस कर कहा—"ऐ लो मैं बताए देती हूं, परन्तु इससे आप को क्या लाभ होगा, इस नगर में जो सब से अधिक रूपवती स्त्री है, उस का विवाह हो चुका है। वह अजीतसिंह बूंदी वाले की दुर्गा है। और वह आप की बड़ी साली है, उस का मुख पूर्णमाशी के चन्द्रमा के समान ज्योतिमान और नेत्र कमल के समान हैं। वह नख से शिख तक सुन्दरता का रूप है। हाथ पांव सब सुडौल। बूंदी क्या ऐसी सुन्दर स्त्री संसार में न होगी।" ऐसी प्रशंसा सुनकर राना के मुंह में पानी भर आया। जहां विवाह की यवनिका (कनात) खिंची हुई थी। राना ने दासियों को धन आदि देकर प्रार्थना की, कि किसी प्रकार उस को दिखला दिया जावे। प्रलोभन बहुत बुरा होता है। उस की कनात भी बूंदी वाली के समीप खींच दी गई, और दासी ने अंगुली के संकेत से कहा "देखो वह जो जड़ाऊ कंगन पहने हुए बैठी है वही तुम्हारी बड़ी साली है।"

राना अज्ञानी था, उसने कुछ सोचा विचारा नहीं। दुर्गा का रूप देख कर उस की बुद्धि जाती रही, वह उस का सम्बन्धी तो हो चुका था, इस लिए उस ने बेधड़क जा कर उसका हाथ पकड़ लिया। रानी को बड़ा क्रोध हुआ। एक तो छोटे बहनोई को बड़ी सालियां कभी छूती नहीं, दूसरे उसका यह आचरण उसे बहुत बुरा और निन्दनीय प्रतीत हुआ, दुर्गा ने नेत्र उठा कर देखा, राना के रूप से कोई और ही भाव प्रकट होता था। रानी ने उस का हाथ झटक कर कहा, "दुर्भाग्य मूर्ख! यह तूने क्या किया? तू नहीं जानता की मैं बूंदी की रानी हूं, जहां की स्त्रियां दूसरे पुरुष को देखना तक अनुचित समझती हैं, पापी मैं तुझ को इस अपराध का दण्ड दिए बिना कदापि न रहूंगी।"

यह कह कर उस ने उसी समय पास रक्खा हुआ तमंचा उठा लिया, और बारूद भरने लगी। राना के काटो तो शरीर में रुधिर नहीं, भयभीत हो गया। वह नहीं जानता था कि रानी इतनी क्रोधित हो जायेगी। राना के इस असभ्य व्यवहार की सूचना सारे रनिवास में फैल गई, सब लोग जानते थे कि बूंदी की स्त्रियां मान मर्य्यादा के अवसर पर प्राण दिए बिना शांत नहीं होतीं।

दुर्गा की माता उसी समय भवन से भागी हुई चली आई। और दुर्गा से कहने लगी "पुत्री क्षमा कर दे, नितान्त

यह तेरा बहनोई है, अज्ञान बालक और मूर्ख है तेरी बहन का अभी विवाह हुआ है, क्या तू उसको आज ही विधवा बनाना चाहती है, पुत्री ! मेरी ओर तो देख, तमंचा रखदे, और उसको क्षमा कर दे" यह कह कर जयपुर की रानी उस के पांव पर गिर पड़ी।

दुर्गा बोली "माता ! यह पापी अवश्य दण्ड देने के योग्य है। मैं अब तेरी पुत्री नहीं बल्कि बूंदी की लाज और शर्म हूं। इसने तेरी पुत्री का अनादर नहीं किया किन्तु बूंदी की रानी की मान हानि की है। मैं अपनी ओर से तो क्षमा किए देती हूं परन्तु बूंदी वाले इसके इस व्यवहार को अवश्य क्षमा के अयोग्य समझेंगे। तू रोकती है इस लिए दण्ड नहीं देती। जी तो यह चाहता था, कि इस का यहां ही वध कर दिया जाता किन्तु मैं अपना हाथ रोक लेती हूं। परन्तु जिस हाथ को इस ने स्पर्श किया है, यह काट कर फेंक दूंगी। अब वह इस योग्य नहीं रहा, कि बूंदी के पवित्र राज की सेवा कर सके। अब मुझ को यहां रहना पाप है, एक क्षण भी यहां न ठहरूंगी।"

दुर्गा बातें करती जाती थी और उस के हृदय में क्रोध की ज्वाला क्षण प्रति क्षण प्रचण्ड होती जाती थी। उस ने अपनी सखी से कहा "सखी कटार उठा ला, अमरसिंह ने मेरे जिस हाथ को छू लिया है, उस को अभी काट दूं।"

सखी सहम गई, रानी के नेत्र क्रोध से अंगार बन रहे थे, जयपुर की रानी इस की माता दंग थी, अमरसिंह का पांव धरती में जम गया था, एक सिंहनी को छेड़ कर उस ने व्यर्थ सिर पर आपत्ति सहेड़ ली थी। सखी को आगा पीछा करते देख उस ने जोर से कहा "क्यों सखी अपनी रानी की आज्ञा नहीं मानती।" वह रोती हुई पांव पर गिर पड़ी। दुर्गा महा क्रोध में थी, उसने हंसकर कहा "जा ऐसे अवसर पर प्रेम और कोमल भाव प्रगट करना राजपूतनी के लिए अनुचित है, तू जा कटार ले आ"।

सखी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, कटार उठा कर उस के हवाले की। रानी ने दाहने हाथ में कटार ले कर बांए हाथ को उसी समय काट डाला, और वह धरती पर झट से गिर पड़ा, रुधिर बहने लगा। कोई और पुरुष होता तो दुर्बलता और पीड़ा के कारण मूर्छित हो जाता, परन्तु क्षत्रानी निराली स्त्री थी। यह अपने स्थान से उठ खड़ी हुई, और दासियों को आज्ञा दी कि "मेरा घोड़ा अभी तैयार किया जाय और सब सखियां मेरे साथ बूंदी को रवाना हों। जयपुर का अन्न जल खाना आज से मेरे लिए पाप है क्योंकि यहां बूंदी राजा की मान हानि हुई है। घोड़े तैयार होकर आ गए रानी के हाथ से खून बह रहा था, वह उसी तरह उठी और कूदकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गई, हाथ में लगाम के सिवा कोई और वस्तु न थी।

रानी चल पड़ी, बूंदी के सब मनुष्य रानी के पीछे २ चल पड़े, सब के हृदयों में क्रोध की आग भीतर ही भीतर जल रही थी। परन्तु रानी को मौन देखकर सब के सब चुप थे।

यह सब लोग अभी मार्ग में ही थे कि अजीतसिंह के आने का समाचार सुनाया गया। रानी के चले आने से उस को शान्ति नहीं थी, वह चित्त बहलाने के लिये शिकार खेलने निकला और जयपुर की ओर बढ़ता चला आया। रानी ने अपनी एक दासी से कहा—"सखी! जा और बून्दी नरेश को अभी मेरे सामने ले आ, मैं उस से बातचीत करना चाहती हूं" दासी दौड़ी और जब वह राजा के पास पहुंची तो राजा ने आश्चर्य्य पूर्वक कहा—"तू यहां कहां? रानी कहां है! और तू इतनी व्याकुल क्यों है? उस ने उत्तर दिया—"अन्न दाता! मुझ को विशेष हाल बतलाने की आज्ञा नहीं, रानी जी आप के आगमन में पेड़ के नीचे खड़ी हैं। आप को बुला रहीं हैं, वह स्वयं आपको सारा वृत्तान्त कह सुनावेंगी"।

राजा उसी समय वहां आया जहां रानी खड़ी थी, सारी देह रुधिर से भर गई थी, एक हाथ कटा हुआ और दूसरे हाथ में लगाम थी। रानी की दशा देख कर राजा चिल्ला उठा, "अरे यह क्या हुआ, क्या आश्चर्य्य है! किस कारण यह आपत्ति सिर पर आई" रानी ने कहा—

राजन् ! सन्तोष पूर्वक मेरा हाल और बून्दी के अपमान का वृत्तान्त सुनिये और तब उस ने आदि से अन्त तक सारा वृत्तांत कह सुनाया।

राजा ने पानी मंगाकर अपने हाथ से उस के रुधिर को धोया, घोड़े से भूमि पर उतार लिया, जब रानी भूमि पर आगई, तो उस के सिर में चक्कर आने लगा और फिर वह मूर्छित हो गई राजा ने उस को डोली में लिटा दिया और मन में प्रण कर लिया कि जब तक राना अमरसिंह को न मार डालूंगा, तब तक कभी दुर्गा के भवन में न जाऊंगा।

रानी तो डोली में मूर्छित पड़ी है, आस पास दासियां दुःख से रो रही हैं। अजीतसिंह घोड़े पर सवार हुआ और जयपुर की ओर चल दिया। दूसरे दिन राना भी सुसराल से बिदा हुआ था, राह में अजीतसिंह से मिला। सब ने उस का आदर किया, उसने अमरसिंह से मिलना चाहा परन्तु साथियों को भय हुआ क्योंकि बून्दी वालों के अपमान का वृत्तान्त सब सुन चुके थे। परन्तु यह भी सोचा कि सम्भव है रानी से उस की भेंट न हुई हो, वह सैर अथवा शिकार में था। अजीतसिंह ने उनको भयभीत देखकर घोड़े को एड़ लगाई और दूसरे पल में वह उदयपुर की सेना में जा धमका अभी अमर-सिंह को समय भी नहीं मिला था कि उसका आदर सत्कार करता, उस ने तड़प कर कहा "बून्दी के हानिकारक सावधान

होजा, अजीतसिंह आ पहुंचा, जिस हाथ से तू ने रानी का अपमान किया है, मैं उसको काट डालूंगा"। राना घबरा गया और सम्भल न सका, इतने में अजीत का भाला उस की छाती पर जा पहुंचा, वह लौटन कबूतर की न्याई भूमि पर तड़पने लगा। दूसरे पल में अजीत की तलवार ने उसका बांया हाथ काट डाला, और उसको हाथ में लिये हुए वहां से कूच कर दिया। बूंदी के सवार भी उस के पीछे पीछे चल पड़े, उदयपुर की सेना वालों में किसी का साहस न पड़ा कि उसको रोक सके अथवा उसके रुधिर का बदला ले। एक हल चल सी मच गई। नई दुलहन जिस ने अभी तक अच्छी प्रकार अपने पति का मुख भी नहीं देखा था पालकी से नीचे उतरी और उसने राना की शव को उठाकर गोद में ले लिया उस दुखिया के मुख से आह तक नहीं निकली। उसने मनुष्यों से संकेत पूर्वक कहा कि मार्ग पर जहां मेरा पति मारा गया है एक चिता तैयार कर दो।

अल्पायु बालविधवा रानी अमरसिंह की शव को गोद में ले कर बैठ गई और जब चिता में अग्नि प्रवेश की गई और उसकी प्रचण्ड ज्वाला ऊंची हुई तो वह यह कहती हुई सुनाई दी "प्राणपति! मेरे भाग्य में यह लिखा था कि विवाह होते हम से तुम से वियोग हो, तुम्हारा कोई दोष नहीं मेरे करमों ने तुम से यह अनुचित कर्म कराया और तुम

चल बसे, मैं तुम्हारे संग चलती हूं। कर्म्म पर किसी का बस नहीं, मनुष्य क्या विचारता है और क्या होता है। संसार में किसी बात का ठिकाना नहीं है। मैं कम सुन्दर नहीं थी कि तुम ने पराई स्त्री की ओर ध्यान दिया परन्तु यह होनी थी इस को कोई रोक नहीं सकता था। हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो,....और क्षण भर में अग्नि ने उसको भस्म कर दिया"।

यह दुर्गा का संक्षिप्त वृत्तान्त है। इस के पश्चात् क्या हुआ इतिहास से कोई पता नहीं चलता। कथा यहां आकर समाप्त हो जाती है और हम को नहीं मालूम कि इस के पश्चात् क्या हुआ। उसके जीवन का यह संक्षिप्त वृत्तान्त कम शिक्षा दायक नहीं है और हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि जो मनुष्य इस पवित्र कहानी को सुनें उन का मन पवित्र हो, उन का संकल्प पवित्र हो, और उन में इसी प्रकार ईश्वर और धर्म्म का प्रेम उत्पन्न हो।

ऐसा यह संसार है, ज्यों समेर का फूल।
दिन दस के व्यवहार में, झूटे रंग न भूल॥
पांच पहर धन्दे गया, तीन पहर रहा सोय।
एको पहर हरि ना भजै, नर अवेत बहु होय॥
वारू की दीवार जग, विनसत लगे न वार।
कबीर हरि की भक्ति बिन, धृग जीवन संसार॥

५—उर्मिला।

वासर ना सुख रैन सुख, ना सुख स्वपने मांह।
जो नर विसरे राम को तिन को धूप न छांह॥
यह तन मन है पिया का, पियका लोक और लाज
पिय पर सब कुछ वारिहों, जीवन पिय के काज॥

उर्मिला अजमेर के राजा धर्म्म गजदेव चौहान की धर्म्म पत्नि थी, यह सुशील और उच्च विचार वाली स्त्री थी, और राजनीति के व्यवहार को भली भांति समझती थी। धर्म्म गजवेद के और भी रानियां थीं। परन्तु उर्मिला उसको सब से विशेष प्यारी थी और उस के प्रेम ने राजा के हृदय में घर कर लिया था। वह राज काज की बातों में भलीभांति चतुर थी और मंत्री के काम भी किया करती थी, और कभी कभी सैर और शिकार में भी राजा के साथ साथ रहा करती थी।

जिस समय में धर्म्म गजदेव अजमेर में राज करता था, उसी समय महमूद गज़नवी ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था। प्रथम उसने सोमनाथ लूटा, फिर मुलतान को लूटा, पश्चात् अजमेर पर चढ़ाई की चेष्टा की। धर्म्मगजदेव ने जब

यह समाचार सुना तो वह अपनी सेना के प्रबन्ध में लग गया। इससे पहिले भी एक बार उस ने महमूद गज़नवी का बड़ी निर्भयता पूर्वक सामना किया था जिसमें शत्रु को उस का लोहा मानना पड़ा और सुलतान ने विचार लिया कि इस से बस नहीं चलेगा। परन्तु इस समय आपस में फूट थी, वह बराबर दबाता चला गया। अजमेर पर चढ़ाई केवल धर्म्मगजदेव को नीचा दिखाने के हेतु की गई थी।

धर्म्मगजदेव के पास पहिले सेना बहुत थी परन्तु मुसलमानों के साथ लड़ कर खप चुकी थी, केवल इने गिने सरदार बच रहे थे। किसी से सहायता की आशा नहीं रही थी। क्योंकि हिन्दू मिल कर शत्रु का सामना नहीं करते थे, अलग अलग अपना राज्य बचाने के विचार में लगे थे इसी कारण उन को हानि हुआ करती थी।

राजा सोच में अवश्य था, परन्तु उस में धैर्य्य और वीरता भी थी। अजमेर के इधर उधर कई राजधानियां थीं। धर्म्मगजदेव ने लड़ाई के विचार को प्रकट किया और अपने राज में सूचना कर दी कि जिस राजपूत को अपने कर्त्तव्य दिखाने का साहस हो वह इस समय शत्रु से युद्ध करे।

यह सच है हिन्दू उस समय बिगड़ गये थे उनमें जाति अभिमान और देश हित का विचार नहीं रहा था परन्तु धर्म का भाव कुछ न कुछ शेष था। राजा का संदेश सुन कर

माताओं ने अपने अपने पुत्रों को बुला कर कहा, पुत्रो! आज वह समय आगया है जिस के लिये क्षत्राणियां पुत्र उत्पन्न किया करती हैं। बहिनें प्रसन्न थीं क्योंकि उन को भाइयों के कमर से तलवार बांधने और वीर कह कर धर्म्म युद्ध में भेजने का समय मिलने वाला था। स्त्रियों को इस बात का घमण्ड था कि उन के पति धर्म्म की रक्षा में किसी से पीछे न रहेंगे।

इस समय पर जिन बातों से स्त्रियें पुरुषों को उत्साहित कर संग्राम में भेजती थीं हम उन को उद्धृत कर देना यहां आवश्यक समझते हैं :—

माता पुत्र से कहती है "पुत्र जा आज मेरे दूध की पवित्रता को दिखा दे, देखने वाले अचम्भित हो जावें और कहने लगें कि यह सच्चा क्षत्री पुत्र है, पवित्र कोख से उत्पन्न हुआ है, और जानता है कि प्राण से किस प्रकार का काम लेना उचित है। पुत्र! जा राजा के झंडे के नीचे सबके बीच से तेरा घोड़ा हिनहिनाता हुआ निकले, वह सब के आगे रहे और तेरी तलवार की चमक से शत्रु चका चौंध हों। पुत्र! जा धर्म्म, राज और देश की रक्षा कर। जिस घर में एक भी वीर उत्पन्न हो जाता है उस की सात पीढ़ी तर जाती हैं। आगे बढ़ कर पीछे फिरने का विचार न करना, मैं बलि बलि जाऊंगी, जब मैं सुनूंगी, कि मेरे पुत्र ने क्षत्री धर्म का पालन किया, मेरी छाती ठंडी हो जायेगी"।

बहिन भाई को कवच पहना कर, कमर से कटार लटका कर कहती थी "वीर ! पवित्र माता पिता की सार्क ! देख ! भावजों का विचार छोड़कर तुम युद्ध में जारहे हो, बहिन की बात स्मरण रक्खो, तुम्हारी देह पर सहस्रों घाव लगें परन्तु पीछे न हटना। सहस्र को मारकर मरना, और जब कोई कहेगा कि तेरे भाई के छाती पर घाव लगे हैं और पीठ पर एक भी नहीं तो मैं बहुत प्रसन्न हूंगी, तेरे सिर से मोती जवाहिर न्योछावर करूंगी। घर आना तो शत्रुओं की शव की सीढी बनाकर स्वर्ग को चढ़ जाना"।

विवाहित स्त्री अपने पति से कहती थी "मेरे माथे के मुकुट ! जीवन में यह समय नित्य२ नहीं आते हैं। क्षत्री का सुख संग्राम में है, घोड़े अथवा वीर मनुष्य रण भूमि में जागते हैं। अभी तुम सो रहे थे, अब तुम्हारे जागरण का समय आगया है। जावो संसार को दिखा दो कि सिंह जाग उठे हैं, या तो शत्रुओं को नीचा दिखा कर आवो या स्वर्ग में अप्सराओं के संग विवाह करो और मैं भी तुम्हारी दासी बनने के हेतु अग्नि यान पर चढ़ कर पीछे पीछे आऊंगी। प्राण नाथ ! कोई यह न कहने पावे कि अमुक स्त्री का पति संग्राम में अपना काम नहीं कर सका, मेरी लाज तुम्हारे हाथ है । संसार में कोई सुख नहीं, श्रेष्ठ सुख वह है जो स्वर्ग में मिलेगा"।

इस प्रकार की बातें क्षत्रियों में ऐसे समयों पर बहुत

प्रचालित थीं, उन से स्पष्ट विदित होता है। कि उन का भाव कितना ऊँचा था।

धर्म्मगजदेव का संदेसा सुनते ही सहस्रों की संख्या में शूर और साहसी राजपूत एकत्रित हो गये, धर्म्मगजदेव ने सब को अपनी छावनी में स्थान दिया, यह सब अनजान अवश्य थे परन्तु उन में भी कोई ऐसा नहीं था जो राज के लिये जीवन न्योछायर करने से नाहीं करता।

महारानी उर्मिला अचेत नहीं थी, उस को हर बात की सूचना थी और सारा काम उस के परामर्श से हुआ करता था। जो कुछ हो सका, उस ने सेना सम्बन्धी कामों में सहायता दी। जब अन्तिम समय आ गया और केवल एक प्रहर रात बाकी थी तो धर्म्मगजदेव उठा स्नानादि कर उस ने ईश्वर की पूजा की और जब छावनी में सेना लेने के लिये चला तो रानी ने कहा स्वामी! आज्ञा हो कि मैं भी रण भूमि में चलूं, मेरे वास्ते भवन की जगह नहीं, मेरा स्थान आप के बांयें ओर है, सुख और दुःख में अर्थात् हर समय में मुझ को तुम्हारे संग रहने का अधिकार दिया गया है। मेरी इच्छा है, आप आज्ञा दो मैं भी केसरिया बाना पहिन कर और इस सिर को आप के ऊपर न्योछावर करके अपना जन्म सफल करूं ऐसा समय मुझ को फिर कब मिलेगा"। राजा की आत्मा वीर रानि की रस भरी बातें सुन कर बल्लियों उछल पड़ी,

"धन्य है ! तू धन्य है ! मुझ को कोई रोक नहीं है, तू प्रसन्नता पूर्वक युद्ध में भाग ले सकती है, मैं जानता हूं जिस समय तेरी तलवार चमकेगी शत्रु भय से दब रहेंगे। परन्तु दो एक बातें हैं जिन पर विचार करना तेरा काम है प्रथम तेरे संग रहने के कारण मुझ को प्रत्येक समय तेरी ही रक्षा की चिन्ता रहेगी, क्या आश्चर्य कि मैं अपना काम भली भांन्ति न कर सकूं। दूसरे यह वर्षाऋतु है, काली काली घटाएं छा रही हैं बिजली चमक रही है, जब मूसलाधार वर्षा होने लगी। तेरा क्या हाल होगा। मुझ को तेरी दशा देख कर नम्र भाव होना पड़ेगा और फिर अपने दुःख की नहीं, किन्तु तेरे सुख की चिन्ता लगी रहेगी। तीसरे मैं अजमेर में एक ऐसा मनुष्य छोड़ना चाहता हूं जो राज के प्रबन्ध को ठीक रख सके। समय कुसमय मेरी सेना के लिये रसद और मनुष्यों का प्रबन्ध करे। मुझ में यह सर्वगुण हैं और यह सब बातें तेरे जाने में प्रतिवाधित हैं।

रानी ने ध्यान पूर्वक राजा की बातें सुनी और उस के कांधे पर हाथ धरकर उत्तर दिया "आप की आज्ञा सिर आंखों पर ! ईश्वर आप की रक्षा करे, आप आनन्द पूर्वक शत्रुओं को नीचा दिखा के आवें और यदि कोई ऐसा समय आ भी गया तो आप उर्मिला को सदैव अपने संग पावेंगे, इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। बहुत अच्छा आप प्रसन्नता पूर्वक जाइये और अपना काम कीजिये"।

स्त्री पुरुष दोनों अंत समय मिले, राजा फिर छावनी में आया, नकारे पर चोब दी गई। राजपूत पहिले ही से तैयार बैठे थे, आज्ञा पाने की आवश्यकता थी। सब सजे सजाये घोड़ों पर सवार हो गए और फिर समुद्र की उमड़ती हुई लहरों के समान शत्रुओं के नाश करने के वास्ते आगे बढ़े। लोहे से लोहा बजने लगा, तलवार पर तलवार चमकने लगी, राजपूतों ने इस प्रकार वीरता के कर्त्तव्य दिखाये कि शत्रुओं ने उनका लोहा मान लिया।

भालों में जो तेग़ों को संभाले नज़र आये,
अफ़सर नज़र आये न रिसाले नज़र आये।
रेती पे तपां बराबियों वाले नज़र आये,
हर सफ़ की जगह खून के थाले नज़र आये।
गुल था कि रण ऐसा कभी पड़ते नहीं देखा,
मरदों को इस अन्दाज़ से लड़ते नहीं देखा।

धर्मगजदेव जिस ओर झुका शत्रु को साफ़ कर दिया उस की वीरता ने राजपूतों के साहस को बढ़ा दिया। परन्तु हिन्दुओं के नाश का समय निकट आगया था। एक मुसलमान के तीर ने उसको निकम्मा कर दिया, वह संभलना

चाहता था कि एक दूसरे तीर ने उसे भूमि पर गिरा दिया। राजपूत सरदार की मृत्यु से अत्यन्त दुखी हुये परन्तु उस समय वह दिल खोलकर लड़े। सायंकाल को राजा की शव को ले कर दुर्ग में आये। शव पर फूलों की वर्षा की गई। सब की आशाओं पर पानी पड़ गया। जिस समय रानी ने सुना कि राजा स्वर्ग को सधार गया उस पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा वह महल से बाहर आई और राजा की शव को प्रेम के नेत्रों से देख आज्ञा दी कि अभी चिता तैयार कर दो। बहुत सी स्त्रियां रानी के चहुं ओर एकत्रित होगईं और उन्हों ने उसको सती होने से रोकना चाहा। पुरुषों ने रोककर कहा माता तू हम को लड़ने की आज्ञा दे और हम पर राजकर। उर्मिला बोली इसका समय नहीं है और हंस कर उन से कहने लगीः—राजपूतो! वह समय आ गया है जिस कार्य्य के वास्ते राजपूतनियां लड़के उत्पन्न करती हैं वह कार्य्य राजा ने किया दूसरे दिन तुम स्वयं इस कार्य्य को करोगे। फिर वह स्त्रियों को सम्बोधन कर बोली कि जिस कार्य्य के वास्ते राजपूतनियां पुत्रियां उत्पन्न करती हैं उस से मुझ को मत रोको, तुम भी वही काम करो और समय पर अपना धर्म्म करो।

फिर नगर की वृद्ध स्त्रियां समझाने लगीं "पुत्री तू धीर धर और जल्दी मत कर। उस ने उत्तर में कहा कि मेरा सुख दुःख का साथी संसार से उठ गया। जब शरीर से

आत्मा निकल जाय तो उसको केवल अज्ञानी ही घरमें रखते हैं। मैं जीती नहीं मर चुकी हूं, तुम ही बताओ कि मेरे लिए अब संसार में क्या रहा है। जिस के सिर से ताज उतार लिया गया यदि वह उस राज में रहे तो निर्लज और मूढ़ है। जिस की लाज खोई गई और बड़ाई घट गई उस की मृत्यु जीवन से अच्छी है। जिस का मित्र नहीं वह अकेला है, उस को जीवन की आशा रखनी व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस स्त्री का पति नहीं उसका संसार में रहना कदापि उचित नहीं। मैंने राजा को आज प्रातःकाल कह दिया था कि आप के संग ही संग आऊंगी। मेरा आत्मा अब भी राजा क संग है, यहां केवल पिन्जर ही पड़ा है इस वास्ते तुम में से कोई भी मेरी राह को मत रोके।

सती के भावों को देखकर उसी समय चिता बनाई गई। वह राजा की शव को गोद में लेकर बैठ गई, चिता में अग्नि प्रवेश की गई और जब उस की लाट निकलनी आरम्भ हुई राजपूत और राजपूतनियां उसके अन्त समय के दर्शन के हेतु आगे बढ़े। उसने उन सब को सम्बोधन कर कहा राजपूतो! राज और देश की लाज तुम्हारे हाथ है। कल ही तुम अपने राजा की न्याई चलते हुए संसार को दिखा जावो कि राजपूत जीवन को तुच्छ समझते हैं। वह अपमान और निर्लज्जता को नहीं सह सकते और अपने देश की भक्ति में जीवन दे देना

उचित समझते हैं। यदि जीवो तो राजपूतों की न्याईं यदि मरो तो भी राजपूतों की न्याईं। राजपूतोंके नाम को कभी कलंक न लगने पावे। यह राज तुम्हारी माता है और तुम उसके पुत्र हो माता की सेवा करना तुम्हारा परम धर्म है। राजपूतनियो ! शत्रु सिर पर है स्त्रियां कुल कुटुम्ब की लाज हैं, मातायें बहनें और स्त्रियां अपने अपने सम्बन्धियों को सुमार्ग पर चलावें। सब अपना धर्म्म पालन करें। यदि राज है तो धर्म है। स्वतंत्रता है तो अच्छा नहीं तो यह ढंग पकड़ो जो तुम्हारी रानी बता रही है।

बात अभी पूरी भी नहीं होने पाई थी कि अग्नि की प्रचंड लाट भभक कर निकलनी आरम्भ हुई और रानी के कपड़ों और केशों में आग लग गई। सती धैर्य्य और शांति पूर्वक बैठी रही, हाथ जल रहा है, छाती जल रही है, सिर जल रहा है, परन्तु वह उसी प्रकार से पति के शव को गोद में लिये बैठी रही। थोड़े समय में अग्नि ने अपना कार्य्य समाप्त कर दिया, वह सब के देखते २ स्वर्ग को सिधार गई। जिन्होंने उस समय को देखा है वह कदापि न भूल सकेंगे।

दूसरे दिन रानी की आज्ञा के अनुसार राजपूत और राजपूतनियों ने अपने धर्म्म का पालन किया परन्तु उस का इस कथा से कुछ सम्बन्ध नहीं है इस वास्ते छोड़ दिया जाता है।

उर्मिला धन्य थी। उस का साहस धन्य था। जो लोग इस वृत्तान्त को पढ़ें ईश्वर करे वह अपने धर्म्म को समझें यही हमारी प्रार्थना है।

यह राहे हक पर जो कदम आगे बढ़ायेगा।
यदि स्वर्ग कोई वस्तु है तो वह पहले पाएगा॥

उस की मुख की कान्ति और नथोली —
आँखें मुझे अभी याद हैं, उस के लाल गाल, उसके सुन्दर
लाल लाल, उस के मुस्कान भरे और [illegible]
हुई छाती, उस के गोरी गोरी बाँहें मुझे अभी य[illegible]
याद हैं जब मुझे उसकी याद आती है तो
मैं रोता हूँ। उस ने पूर्ण रूप से मुझे अपना
और आकर्षित किया था।
प्यार वह इस संसार [illegible] मैं हूँ परन्तु मेरे [illegible]
की आँखों से दूर। मेरे दोस्त। अगर
आप कभी कहीं जायेंगे तो मेरा
संदेश सुनाना।



[illegible]

नोट:— [illegible] लोकमधाम जी आपको कहता हूँ हैं।

उस के मुख की कान्ति और थी।
जैसे चाँदनी में चकोर थी॥

६—मीना।

पतिव्रता है सूरमा, चित्त अनेक विवेक।
बल पौरुष की खान है, जामें सिद्धि अनेक॥

मीना आनन्दराव लुवार की रानी थी जो धार का राजा था, मीना बड़ी सुशील, धर्मिष्ट और वीर स्त्री थी। इस में सब से विशेष गुण यह था कि वह आपत्ति के समय अपने धैर्य्य को नष्ट होने नहीं देती थी, और न ही व्याकुल होती। आनन्दराव सं० १७६७ ई०में धार में राज करता था, स्त्री पुरुष दोनों का एक ही स्वभाव था और एक दूसरे से बड़ा प्रेम रखते थे। कहने को आनन्दराव के कई एक मंत्री थे परन्तु राज काज के कामों में इसकी रानी विशेष कर मंत्री के कार्य्य में सहायता देती थी। कोई ऐसी बात राज में नहीं होती थी जिस में रानी का हाथ न रहता हो, और राजा के चित्त में उस के प्रति इतनी श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया था कि वह रानी के परामर्श बिना कोई कार्य नहीं करता था, दोनों एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त थे।

परन्तु ईश्वर की लीला और काल का चक्र ऐसा आया, कि आनन्दराव अत्यन्त रोगी हो गया। बहुत कुछ औषधि इत्यादि की गई परन्तु वह बच न सका। मीनाबाई

पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। उस की इच्छा थी कि वह पति के संग सती हो जावे परन्तु वह गर्भवती थी। ऐसे समय में सती होना पाप समझा जाता है। निदान उस ने संतोष तथा धैर्य्य से काम लिया और पति के मरते ही राज काज का काम अपने हाथ में ले लिया।

इन्दौर इत्यादि और दूसरे निकट निवासी राजा आनन्दराव के राज की स्वतंत्रता देख कर ईर्षा से जलते थे। धार छोटी सी राजधानी थी, परन्तु उस का प्रबन्ध इतना अच्छा था कि शत्रुओं को उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता था। अब जब कि धार की गद्दी खाली थी और राज का प्रबन्ध रानी के हाथ में था, हुलकर के मुख में पानी भर आया। उसने धार के कई आदमी अपनी ओर कर लिये और मुरारीराव नामी एक छोटे सरदार को गद्दी पर बैठाना चाहा। मीना को पहले ही विदित था कि पति के मरते ही शत्रुओं को पांव पसारने का अवसर हाथ आयेगा। उसने दो चार राज-भक्त मनुष्यों को बुला कर रख लिया जो हर समय राज के सब कार्य्यों की जांच परताल किया करते थे और रानी को उन की सूचना पहुंचाया करते थे। परन्तु वह स्त्री थी, समय अनुसार आवश्यकता देख कर उस ने धार का प्रबन्ध मंत्री को सौंप कर स्वयं उस गांव में जा कर रहने लगी। कुछ समय पश्चात् उसकी कोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ

जिस का नाम रामचन्द्रराव रक्खा गया। उसका उत्पन्न होना था कि रानी का साहस बढ़ गया। उस ने अपने मनुष्यों से कहा कि राज्य का अधिकारी उत्पन्न हो गया है, अब किसी की शक्ति नहीं है जो धार को हमारे हाथ से छीन सके। धार हमारा है और हमारा ही रहेगा।

रानी को नगर से बाहर देख मुरारी राव ने दुर्ग को अपने हाथ में लेना चाहा, परन्तु रानी दुर्ग को सुदृढ़ कर गई थी, भोजनादि सामग्री पर्य्याप्त थी, किलेदार जानकार और राजभक्त आदमी था। नगर छोड़ते समय रानीने किलेदार को समझा कर कहा मैं स्वयं दुर्ग में रहती परन्तु मेरे दुर्ग में बन्द हो जाने से काम खराब होगा। दुर्ग तुम्हारे हाथ में है मैं पुत्र का पूरा प्रबन्ध करके बाहर रह कर शत्रुओं की चेष्टा को नष्ट करती रहूंगी।

जब मुरारीराव ने देखा कि किलेदार गम्भीर चित्त है और कदापि दुर्ग को न छोड़ेगा, और दूसरी ओर रानी आस पास के आदमियों में अपनी भक्ति उत्पन्न कर रही है उस ने कपट से काम लेना उचित समझा। जहां बल पौरुष काम नहीं देता वहां ऐसे समयों पर मनुष्य चतुराई से काम लेते हैं। लड़के के उत्पन्न होने से सब को प्रसन्नता हुई और मुरारीराव का इस प्रकार सामना किया गया कि अब उस को लड़ने की इच्छा नहीं रही। उस ने रानी से कहला

भेजा मैं तुम्हारा पहिले ही से आज्ञा पालक हूं गद्दी के अधिकारी न होने से स्वतन्त्रता में भय था इस वास्ते मैं चाहता था कि इस का प्रबन्ध ठीक रहे अब अधिकारी उत्पन्न हो गया है अब प्रसन्नता से नगर में आइये और राज काज को संभालिये।

मीना उस के कपट जाल में आगई। समझा क्या आश्चर्य यह सच कहता हो, अन्त बहुत सोच विचार के पश्चात् नगर में गई परन्तु जब दुर्ग की ओर चली तो कृतघ्न मुरारीराव ने मार्ग को रोक दिया। विवश होकर क्या करती। नगर में आ कर रही और उस के मकान के चहुं ओर आदमियों का पहरा नियत कर दिया गया ताकि वह अब और स्थान में न जा सके। रानी कैद हो गई, उस समय सचमुच उस को चिन्ता हुई क्योंकि राजकुमार भी उस के संग था परन्तु फिर भी उस ने धैर्य को नहीं छोड़ा और उसी बुद्धिमत्ता और चतुरता से वह मुरारीराव की चाल ढाल की जांच परताल करती रही।

अब मुरारीराव को यह विचार उत्पन्न हुआ कि किसी प्रकार रानी के भवन में आग लगा दी जाय ताकि माता और पुत्र दोनों भीतर ही झुलस कर मर जायें क्यों कि वह जानता था जब तक यह रहेंगे कोई रानी का सामना करने को न आवेगा। सायंकाल का समय था जब रानी को शत्रु के कुछ

की सूचना दी गई उस ने थोड़े समय के लिये अपने सिर को नीचा कर लिया और चिन्ता भाव से छोटे बच्चे की ओर देखने लगी। माता को अपनी ओर देखने से पुत्र हंसने और चिल्लानेलगा—भोले भाले पुत्र की सैन बैन ने माता की आत्मा को बहुत दुःख पहुंचाया। पुत्र को गोद में लेकर रोने लगी। परन्तु उस का चित्त शत्रुओं की ओर से हटा हुआ नहीं था।

मीना के संग एक दाई रहती थी रानी ने उस की ओर देखा और कहा बाई! यह तेरा राजकुमार है, तू चतुर है और विशेष बुद्धिमान है अपने पुत्र को मुझे दे मैं इस की देख भाल करूंगी राजकुमार को मैं घुट्टी में अफीम पिलाये देती हूं, वह चुप सोता रहेगा और तू पुरुषों का वस्त्र पहन ले और मेरी अंगूठी लेकर द्वारपाल के पास चली जा, किसी को कानोकान पता न लगने पावे, कि क्या हो रहा है। जब तू दुर्ग से लौट कर आवेगी तो फिर मैं अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर लूंगी॥

राजपूतनी बुद्धिमान स्त्री थी। उस ने उसी समय राजकुमार को ले लिया और औरों की दृष्टि बचाती हुई चतुरता से दुर्ग के द्वारपर पहुंची, द्वारपालों ने रोका, उस ने उनको अंगूठी दिखाकर संकेत से उन्हें चुप रहने को कहा, फिर क्या था दूसरे क्षण में वह भीतर पहुंची और द्वारपाल की गोद में रामचन्द्र राव को देकर कहने लगी " रानी इन को-तुम्हें

देती हूं, आज से तुम इस राजकुमार की माता और रक्षा करने वाले के कर्त्तव्य को पालन करो, मैं थोड़े ही समय में धार के प्रबन्ध को ठीक रखूंगी।

जब द्वारपाल को मालूम हुआ कि उसकी गोद में धार का राजकुमार दिया गया है। उस ने उस को उसी समय प्रणाम किया और अपनी स्त्री के सपुर्द करके लौंडी को भरोसा देकर कहा "जब तक मेरी अथवा मेरे मनुष्यों में जान है, कभी न तो किसी का दुर्ग पर अधिकार होगा, न कोई राजकुमार का बाल बांकाकर सकेगा।

राजपूतनी उसी चतुरता से आई, और जब रानी ने सुना कि रामचन्द्रराव दुर्ग में पहुंच गया। रानी ने प्रसन्नता से उसी समय मुरारीराव को कहला भेजा। राज का अधिकारी तो दुर्ग में पहुंच गया। अब यदि तू चाहे तो खुशी से भवन में आग देदे मुझे अब कुछ भय नहीं है। मुरारीराव को अत्यन्त खलबली पड़गई। उस के चित्त में क्रोध की अग्नि जलने लगी। उस ने चाहा कि किसी प्रकार से राजकुमार उस के हाथ आजावे। परन्तु यह कठिन था। क्योंकि द्वारपाल कदाचित् रानी को भी लड़के को वापिस न देता। उस ने रानी को कहला भेजा कि " आप को लोगों ने झूठी सूचना दी है। मैं स्वयम् राजकुमार के जीवन की रक्षा करने वाला हूं, मुझ को किसी का भरोसा नहीं। परन्तु

रानी ने कुछ चित्त नहीं दिया, मानों कि वह कारागर में आगई। परन्तु उसकी वीरता और सौन्दर्य्य देखकर मुरारीराव अथवा किसी और को साहस नहीं होती थी, कि उस के साथ कोई विरुद्ध कार्य्य कर सके, रानी जानती थी, कि ऐसे समयों पर शत्रु किस प्रकार काम करते हैं। इस वास्ते उस ने स्वयम् भवन के चारों ओर अपना पहरा कर लिया और उपाय सोचने लगी कि किस प्रकार से मुरारीराव और हुलकर के विचारों को निष्फल किया जावे।

थोड़े ही समय में उसको सूचना मिली कि गुजरात की ओर से उसके लिये सहायता आ रही है। क्योंकि जब वह गांव में थी, उसने भी इधर उधर अपने मनुष्यों को सहायता के निमित्त भेजे हुए थे।

इस समाचार ने रानी को बल और साहस प्रदान किया, गुप्तचरों ने यह कहा कि " आज के तीसरे दिन यह सैना धार में आजावेगी। इस प्रकार की सहायता की सूचना को सब प्रेम से सुनते हैं। परन्तु रानी चित्त में विचारने लगी, यदि कहीं मुरारीराव को यह समाचार मिल गया तो सम्भव है, वह कारागार के कारण से अनुचित लाभ उठाने का विचार करे, इस कारण सायंकाल के समय उस ने वेष बदल दिया और अपने स्थान पर एक स्त्री को बैठा कर चतुरता के साथ भवन से निकल गई, नगर से बाहर हो

चार श्रेष्ठ मनुष्य उस से मिले और वह घोड़े पर सवार होकर इधर उधर गांव में फिरे और एक अच्छी संख्या मनुष्यों की अपने साथ करली और एक स्थान पर ठहर कर सहायता आने से पहले मुरारीराव को कहला भेजा कि तुम्हारा सारा कपट व्यर्थ है । तुम अब कुछ नहीं कर सकते, सेंधिया को अब तुम्हारी सहायता नहीं चाहिए, उस के पुत्र मेरे मनुष्यों के हाथ पड़ गये हैं। वह लिखता है, तुम विनय पूर्वक अपने अपराध की क्षमा रानी से मांग लो, कल ही गायकवाड़ की सहायता मेरे पास आ जावेगी। इस के अतिरिक्त यदि आवश्यकता हुई तो मैं अंग्रेजों से भी सहायता ले सकूंगी, इस लिए मैं आज्ञा देती हूं कि तुम शीघ्र नगर को छोड़ दो नहीं तो कल तुम को कहने सुनने का स्थान नहीं रहेगा।

मुरारीराव को इस चतुर और बुद्धिमान स्त्री के साहस से बड़ा आश्चर्य हुआ, कारागर से इस प्रकार सुगमता के साथ भाग जाना कठिन काम था । परन्तु उसको यह विश्वास नहीं था कि रानी ने गायकवाड़ की सहायता के निमित्त बुलाया होगा । उसने रानी की आज्ञा को कुछ भी नहीं समझा और मूर्खता और उपेक्षा पूर्वक उस का उत्तर दिया।

दूसरे दिन गायकवाड़ की सेना वहां पहुंच गई, यह

दशा देख कर मुरारीराव के हाथ पांव फूल गये, फिर भी उस के साथ पूरी सेना थी और हुलकर ने सहायता देने की प्रतिज्ञा की थी, नगर के बाहर कई घंटे तक लड़ाई रही, जिस में कृतघ्न सैनिक को नीचा देखना पड़ा और रानी ने उसको राज से निकल जाने की आज्ञा दी।

मुरारीराव के हारने और धार में फिर रानी का अच्छा प्रबन्ध होने से प्रजा बहुत प्रसन्न हुई, रानी ने सब की सम्मति लेकर नवयुवक कुमार की राजगद्दी का उत्सव किया। परन्तु यह लड़का भी बहुत दिनों तक नहीं जी सका। उस के मरने से फिर वही दुर्दशा हो गई और राज्य कई उत्तराधिकारी लड़ने को तत्पर हो गये, बिना राजा के राज का चलना असम्भव था, इस कारण समय अनुसार देख कर अपनी रानी ने बहिन के लड़के को गोद में लेकर उस को रामचन्द्र का नाम दिया और राजगद्दी पर बैठा कर उसी के नाम से स्वयं राज का प्रबन्ध करने लगी, उस के शत्रु इतने नीच और असमझ थे कि पिनडारी सरदारों को धार के कई प्रान्तों के देने की प्रतिज्ञा करके सहायता पर ले आये।

रानी उन सब से दिल खोल कर लड़ती रही और न केवल अपने देश को लूट मार से बचा रक्खा। किन्तु उन को हार पर हार देकर लाचार किया कि वह लौट जाय, लड़ाई

कई वर्ष तक रही, इस समय में रुपया की न्यूनता के कारण कुकसी व नादिर के प्रान्तों को सेंधिया के हाथ कई शरतों के साथ गिरो रख दिया । जब हर प्रकार से स्वाधीनता हो गई, तो रानी ने सेंधिया को प्रान्त वापिस देने को कहला भेजा। परन्तु यह कब सुनने लगा था। यह जानता था कि रानी विवश है, इस में सेंधिया के साथ लड़ने की शक्ति नहीं है । इस कारण वह बहुत दिनों तक सुनी अनसुनी करता रहा। निदान विवश होकर रानी ने कहला भेजा। यदि तुम मेरे राज के प्रान्तों को नहीं देते हो तो अब मैं अंग्रेजों से सहायता लेकर तुम को मेरे राज्य से पृथक् करूंगी और फिर तुम्हें हाथ मलना पड़ेगा।

गायकवाड़ नहीं चाहता था कि इस विषय में अंग्रेजों की निकटता हो, इस वास्ते उसने बीच बचाव करना चाहा। इस समय में अंग्रेज पिनडारों के नाश के निमित्त लड़ते हुए आ रहे थे। सेंधिया को उन के बीच में पड़ने से महा दुःख हुआ, बदनावर का प्रान्त उस समय रानी के हाथ न आ सका। उस पर अंग्रेजों ने बलात्कार अधिकार जमाया और फिर धार के साथ सन्धि करके उसको अपनी ओर से दे दिया। मीना ने इस प्रकार अंग्रेजों के छाया से फिर से धार के प्रबन्ध को ठीक किया।

रानी सदैव अंग्रेजों की आज्ञा में रही, उस के साथ तीन सौ सवार और आठ सौ प्यादे रहते थे। जब हर प्रकार से स्वाधीनता हो गई, शेष अवस्था उस ने राज के प्रबन्ध और प्रजा की प्रशंसा के निमित्त व्यतीत किया।

७—राज बाला।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप ॥१॥
सांचे स्राप न लागई, सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिलै, सांचे मांहि समाय ॥२॥
सांचा सौदा कीजिये, सांचा मन में जान।
सांचे हीरा पाइए, सांच न कबहूं हान ॥३॥
जो तू सांचा बानिया, सांची हाट लगाय।
अन्दर झाड़ू फेर कर, कूड़ा झूठ बहाय ॥४॥
साईं आगे सांच हो, साईं सांच सोहाय।

भावैं लम्बे केश कर; भावैं मूंड़ मुड़ाय ॥५॥
जा की सांची सुरत है, ताका सांचा खेल ।
आठ पहर चौसठ घड़ी, सांई सेती मेल ॥६॥
तन में भस्म लगाय कर, मिटी न मन की चाह ।
जब लग सांचा सुरत नहिं; तब लग जोगी नाह ॥
प्रेम प्रीत का चोलना, पहिर कबीरा नाच ।
तन मन तापर वारि हों, जो कोई बोले सांच ॥८॥
सांचा शब्द कबीर का, सांच हि देव संदेश ।
झूठा आगे न बोलिये, सांचा को उपदेश ॥९॥

कार्य चतुर और समयानुसार कार्य करने वाले मनुष्य को धार्मिक कहना झूठ है, उस को न ईश्वर पर विश्वास है और सचाई के महत्व को जानता है। जिस के चित्त में सच ने स्थान कर लिया है, उस की दशा ही कुछ और हो जाती है। संसार के धोखा देने वाले भ्रम उस को कदापि नहीं फंसा सकते और न कभी वह उन में फंसता है, देखने को उसका जीवन आपत्ति तथा दुःखमय हो। परन्तु सच्चाई अपने साथ एक विचित्र प्रकार का साहस

रखती है, जो उस के घाव पर सदैव मरहम रक्खा करता है और उस का अन्तिम परिणाम ईश्वर की कृपा से भला ही होता है।

राजबाला वैशलपुर के ठाकुर प्रतापसिंह की पुत्री थी, जो न केवल देखने ही में सुन्दर थी। परन्तु मनुष्यत्व साहस, धीरता, बुद्धि और चतुरता में भी किसी प्रकार से कम न थी। अपने पति को वह अपने प्राण से भी अधिक प्यार करती थी और उस के जीवन में कभी ऐसा समय नहीं आया, जब उस ने पति के मान और प्रतिष्ठा को सर्वोपरि न रक्खा हो।

उस का विवाह ऊमर कोटा राज्य के सोढा के प्रान्त के राना अनारसिंह के पुत्र अजीतसिंह के साथ हुआ था। अनारसिंह के साथ बहुत बड़ी संख्या सवारों की रहा करती थी, जिन का वह सैनिक था और उस का प्रान्त छोटा होने के कारण वह कभी कभी लूट मार से रुपया की कमी को पूरा कर लेता था। एक बार ऐसा अवसर हुआ कि राव का कोष कहीं से आ रहा था। अनारसिंह को सूचना मिली यह अपने मनुष्य लेकर चढ़ दौड़ा, राव की सेना में वीर और साहस वाले राजपूत थे। दोनों में बहुत लड़ाई हुई, अन्त में अनारसिंह हार गया और उसकी सेना इधर उधर कर दी गई।

इस परास्त में अनारसिंह को कहीं का न रक्खा, अब सोढा में रहना उस का असम्भव था। राजा ने प्रान्त छीन

लिया और देश से बाहर जाने की आज्ञा दी, अपने किये की कोई औषधि नहीं, निदान उस ने वह राज्य छोड़ कर किसी और राज्य के नगर में रहना आरम्भ किया। जिन में से इधर उधर पांच दस घर थे, उस का हाथ पहिले ही तंग था। अब और दशा विगड़ गई और अन्त में दुःख और निर्लज्जता से जीवन को त्याग किया। लड़के की अवस्था उस समय केवल तेरह वर्ष की थी। परन्तु बांकापन और वीरता में वह अपने साथियों में एक ही गिना जाता था। उस परिवार की धीरे धीरे यह दशा हो गई कि अजीत की माता दूसरों का काम काज करके पेट पालन करने लगी, उस विचारी विधवा ने भी पति की न्याई जीवन त्याग किया।

राज-बाला के साथ अजीतसिंह का विवाह उस के पिता के जीते जी ही हो चुका था। मानो यह परिवार अत्यन्त दुःखी बन गया था। परन्तु इस प्रकार के प्रण को राजपूतों में सदैव से बड़पन करते आये हैं। राजपूत पुत्रियां अत्यन्त हठी होती थीं। एक समय जब कभी किसी के साथ उन का नाम निकल गया, फिर वह कभी दूसरे के साथ विवाह करना कदापि उचित नहीं समझती थी।

अजीतसिंह अब अनाथ था, किसी प्रकार विचारा अपना जीवन व्यतीत करता था। उस को विश्वास था कि कदाचित् मेरे श्रेष्ठ होने पर कोटा का राजा उस की जागीर

को फिर दे दे। वह इस आशा पर जीता था, एक समय उस ने किसी राजपूतनी को प्रतापसिंह के यहां समाचार लेने को भेजा कि वह अब भी विवाह करने को उद्यत है या नहीं ? जब वह स्त्री प्रताप के भवन में पहुंची, राजबाला के यौवन का समय आ पहुंचा था। वह विवाह सम्बन्धी बातों को सुन कर साथ की सखियों से कहने लगी—"बहिनो ! मैंने तो अपने पति को नहीं देखा वह कैसे हैं।" यह बोली— "तुम्हारा पति बड़ा सुन्दर है, बुद्धिमान और शूरवीर है।" पति की प्रशंसा सुन कर राजबाला मन में बड़ी प्रसन्न हुई, और कहने लगी "मेरा पति राजपूत है, सौन्दर्य्य वीरता और बुद्धि जिनमें यह बातें हों, वही तो मनुष्य कहलाता है। सब लोग कहते हैं, उन के पास धन सम्पत्ति नहीं है। धन नहीं है न सही जहां बुद्धि और पराक्रम है, वहां धन आप ही आप आ रहता है।

राजबाला ने किसी प्रकार उस स्त्री से भेंट करके कहा "तुम जाके मेरे पति से कहो, इस घर में लोग तुम्हारे धन हीन होने की चर्चा किया करते हैं। परन्तु मैं आज से नहीं कई वर्षों से तुम्हारी हो चुकी हूं, तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी बुराई सुनना नहीं चाहती हूं, इस लिए तुम मेरे पिता से स्वयं कहकर मुझे अपने साथ ले जावो, दरिद्रता हो अथवा धनाढ्यता हो, मैं हर दशा में तुम्हारा साथ दूंगी। किसी का

अधिकार नहीं है कि बात को पलट सके। यदि विवाह होना है तो तुम्हारे संग होगा, नहीं तो राजबाला प्रसन्नता पूर्वक इस संसार से कूच कर जावेगी। राजपूतनी ने जिस समय अजीत को राजबाला का संदेश दिया, वह प्रसन्नता से तन में फूला नहीं समाया और कहने लगा—"कैसे सम्भव है कि मेरे जीते जी कोई और राजबाला को विवाह ले जावे"।

राजबाला के विनय के अनुसार उस ने प्रतापसिंह को विवाह के निमित्त कहला भेजा, उत्तर आया "विवाह करनेमें कोई संदेह नहीं, परन्तु तुम बीस सहस्र रुपया इकट्ठा करके लावो जिस से विदित हो जावे कि तुम मेरी पुत्री का पालन कर सकोगे, जब तक तुम्हारे पास रुपया न हो ऐसी इच्छा करना व्यर्थ है"।

बात उचित थी, क्या कोई भूखा मनुष्य इस प्रकार एक धनाढ्य व प्रशंसनीय मनुष्य के वंश की पुत्री के साथ विवाह कर सकता है? अजीतसिंह चिन्ता के समुद्र में डूब गया। कहे तो कठिन, न कहे तो कठिन। अन्त में उसको जेसलमेर के एक धनाढ्य सेठ की याद आई जिस के यहां से उस के पिता का लेन देन था। वह सेठ के पास आकर कहने लगा कि तुम मेरे वंश के पुराने महाजन हो बीस सहस्र रुपये के बिना मेरा विवाह नहीं होता है, विवाह में व्यय करना आवश्यक है। परन्तु तुम जानते हो मेरे पास न इस समय

राज्य है, न जागीर है। यदि पुराने सम्बन्ध के विचार से मेरे विश्वास पर तुम बीस सहस्र रुपया दे सको तो दे दो। मैं ब्याज समेत तुम्हें दे दूंगा। सेठ ने अजीत को सिर से पांव तक देखा और कहने लगा—"बीस सहस्र रुपये उपस्थित हैं। ईश्वर की साक्षी दो और यह प्रतिज्ञा करो कि जब तक तुम मेरा रुपया न दे दोगे, तब तक अपनी स्त्री के पास जाना अधर्म समझोगे"।

ऐसे प्रण का पालन करना कठिन होता है। परन्तु रुपया मिलने का और कोई उपाय नहीं था। इस लिए उस ने यह स्वीकार कर लिया और बीस सहस्र रुपया लेकर अपने ससुराल में आया। प्रतिज्ञा के अनुसार विवाह कर दिया गया किसी को कानोकान सूचना भी नहीं हुई कि यह रुपया कहां से आया है और न किसी ने पूछा ?

विवाह होने को तो हो गया। वंश की रीति के अनुसार पति और पत्नि दोनों के लिए एक भवन दे दिया गया। यह कई दिन उस में रहे। परन्तु जब सोने का समय आता, तो अजीतसिंह नंगी तलवार बीच में रख कर सोता। राजबाला को उस के इस व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने दिलमें कहा "मेरा पति सचमुच बड़ा सुन्दर बुद्धिमान् और वीर हैं, परन्तु पता नहीं नंगी तलवार रख कर सोने का क्या प्रयोजन है। क्या मेरे भाग्य ने दुःख के भयानक रूप को तो धारण

नहीं किया। इस प्रकार कई दिन व्यतीत होगये, इस व्यवहार से वह चित में अत्यन्त घबराया करती थी परन्तु पूछने का साहस नहीं पड़ता था। कुछ काल पीछे राजबाला ने एक दिन साहस करके पूछा " स्वामी नाथ! मैं देखती हूं कि तुम प्रायः गहरी श्वास लिया करते हो, तुम चित्त में प्रसन्न नहीं हो, कोई न कोई कठिन दुःख तुम को पहुंचा है। मैं तुम्हारी दासी हूं, मुझ से कुछ छिपाना अच्छा नहीं है। मैं विचारूंगी कि किस प्रकार तुम्हारे दुःख का निवारण हो सकता है "।

अजीतसिंह का चित्त इस निष्कपट स्त्री की बात सुन कर भर आया। उस ने पृथिवी की ओर लज्जा से गर्दन नीची कर ली। राजबाला ने फिर कहा "प्राणनाथ! घबराने की कोई बात नहीं, संसार में सब पर कठिन समय आया करते हैं। एक भी ऐसा मनुष्य नहीं जो दुःख का शिकार न बना हो, शोक करना व्यर्थ है। संसार में हर दुःख की औषधि और हर सोच की दवा उपस्थित है। जो अपना दुःख अपने हितैषियों पर प्रकाशित नहीं करते वह निष्प्रयोजन कष्ट में पड़े रहते हैं। आप चिन्ता न करो और मुझ से कहो, जो कुछ मुझ से होगा मैं आप की सहायता करूंगी। यदि मेरे मरने से आप का भला होता है तो मैं अपना जीवन भी हर समय आप पर न्योछावर करने को तय्यार हूं।

संसार में परमात्मा ने स्त्रियों को देवात्मा बना कर भेजा है। वह इस लिए आती हैं कि पुरुषों की कठिनाइयोंको सहल करें, उन के कठोर चित्त को नम्र बनावें, उन के दुःख में साथ दें और मीठी २ बातों से उन के दुःख को हलका करती रहें। यदि स्त्री न होती तो संसार की क्या दशा होती, यह कदापि रहने के योग्य न समझा जाता। स्त्रियों का चित्त एक अथाह समुद्र है जिसमें सहानुभूति की लहरें उठा करती हैं। धन्य है वह पुरुष जिस को इनकी सहानुभूति प्राप्त है, क्योंकि वह एक प्रकार से उस के घाव के लिये मरहम और उस के दुःख के लिये सुख की मूर्त्ति उपस्थित है।

अजीतसिंह ने फिर भी कुछ नहीं कहा और न सिर ऊपर उठाया। राजबाला ने फिर सम्बोधन किया "प्राणपति! क्या राजबाला इस योग्य नहीं है कि तुम उस पर विश्वास करो"। इस वार अजीतसिंह ने उस पवित्र देवी का हाथ पकड़ लिया और दुखित हृदय से अपने दुःख की कहानी कह सुनाई। राजबाला जब भलीभांति सुन चुकी तो कहने लगी "स्वामी! तुम ने बहुत धन देकर मुझ को मूल्य लिया है, मैं क्या कभी इस कृपा को भूल सकती हूँ? कभी नहीं। यह स्थान ऐसा नहीं जहां बीस सहस्र रुपया मिल सके, इस कारण इस को छोड़ना ही अच्छा है। मैं इसी समय पुरुषों का वेष पहिनती हूं और हम तुम दोनों एक साथ रहेंगे। जब

कोई पूछे तो साले बहनोई के सम्बन्ध से उस के प्रश्न का उत्तर देंगे। चलिए परदेश में चल कर महाजन के रुपया देने की चिन्ता कीजिये।

आधी रात का समय था जब स्त्री पुरुष दोनों के बीच में इस प्रकार की बात चीत हुई। सब लोग अचेत निद्रा देवी की गोद में थे। राजबाला ने पुरुषों का भेष धारण किया अपनी एक विश्वास बांदी को साथ ले तीनों घोड़ों पर सवार हो कर एक ओर चल निकले। कई दिन के पश्चात् उदयपुर के नगर में बांके सजीले राजपूत घोड़ों पर सवार दृष्टि पड़े। उस समय मेवाड़ की गद्दी पर जगतसिंह था। वह भवन की छत पर बैठा हुआ नगर की शोभा देख रहा था। नये राजपूतों पर जब दृष्टि पड़ी तो उसी समय उस ने दो विश्वासी गुप्तचरों को उन का हाल मालूम करने की चेष्टा से रवाना किया।

दो घंटे के पश्चात् यह राना के सामने उपस्थित किये गये। जब दोनों प्रणाम कर चुके तो राना ने पूछा "तुम कौन हो? कहां से आये और कहां जारहे हो?" अजीतसिंह ने उत्तर दिया "हम दोनों राजपूत हैं, मेरा नाम अजीतसिंह और मेरे सालेका नाम गुलाबसिंह है। जीविका की आकांक्षा से आप के दरबार में आये हैं। भाग्य ने आप का दर्शन कराया। आगे क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता" राना

राजपूतों की चाल ढाल देख कर प्रसन्न हुआ। उनमें कुछ इस प्रकार की निर्भयता और भलमनसाहत थी, जो उस की दृष्टि में खुभ गई और राजपूत के नाम के प्रेमी महाराना जगतसिंह ने हंस कर प्रेम भाव से अपने यहां उन्हें रखने का निश्चय किया। उन के रहने के लिये उसी समय एक हवेली खाली करादी और खाने पीने के अतिरिक्त पांच रुपया प्रति दिन व्ययार्थ मिलने की आज्ञा हो गई।

स्त्री पुरुष दोनों अब उदयपुर में रहने लगे। परन्तु उन्हें बीस सहस्र की चिन्ता सदैव रहा करती थी। कोई उपाय ऋण के उतारने का समझ में नहीं आता था। यह प्रथम वर्षा ऋतु में उदयपुर आए थे, वह ऋतु व्यतीत हो गई, और दशहरा के त्योहार का समय आ गया। इस दिन राजस्थान में बड़ा उत्सव मनाया जाता है और उदयपुर में पाढ़े के शिकार की रीति थी।

राना के साथ उस के सब सरदार और बड़े २ कर्मचारी घोड़ों पर सवार थे। गुलाब सिंह और अजीतसिंह भी सब के पीछे पीछे उपस्थित थे। इतने में एक हरकारे ने सूचना दी "महाराज की जय हो! पाढ़ा तो नहीं है परंतु एक शेर के निकट होने की सूचना मिली है। राना ने अपने सरदारों से कहा "सरदारो धन्य हो! आज दशहरा का दिन और शेर का शिकार! ऐसा समय कठिनता से प्राप्त होता है। पाढ़े का विचार छोड़ शेर की ओर क्यों न ध्यान दो! आज्ञा की देर

थी। हकवा करने वालों ने तीन ओर से शेर को घेर लिया। उस के निकलने को केवल एक ही राह थी। जिस ओर राना और उस के सरदार आशा में खड़े थे। राना हाथी पर सवार था, वह चाहता था कि मैं ही शिकार करूं। इस लिए उसने सरदारों को स्थान २ पर खड़ा कर दिया था। जिस शेर के आने की सूचना दी गई थी वह कोई सामान्य शेर नहीं था किन्तु शेर बबर था। जब उस ने देखा कि मनुष्य उसको घेर रहे हैं तो वह राना की ओर बढ़ा। उसकी लम्बाई चौड़ाई देख कर राना आश्चर्य में पड़ गया उसने इतना बड़ा भयानक शेर कभी भी नहीं देखा था। उस का मारना सहल नहीं था, दूसरे सरदार भी घबराए। शेर झपट कर राना पर जा पहुंचा और उस के मस्तक से मांस का लोथड़ा नोच कर पीछे को हटा। राना के हाथ से कमान भय के कारण गिर गई, शेर दूसरी बार उछलने की तैयारी कर रहा था कि गुलाबसिंह ने दूर से देखा। समय कठिन था, उसने अजीतसिंह के कान में झुक कर कहा " ठाकुर साहिब ! राना जान जोखिम में है, उस की इस समय सहायता न करना कृतघ्नता होगी। मुझ से देखा नहीं जाता, नमस्कार ! मैं जाता हूं, अजीतसिंह को अभी मुख खोलने का भी समय नहीं मिला था कि गुलाबसिंह का घोड़ा तीर की न्याई संसनाते हुए आगे बढ़ा हाथी अपना हारस खो चुका था। शेर झपट कर

हाथी पर आने ही को था। उस समय राना की कुशलक्षेम नहीं था। परन्तु शेर का उछलना था कि तीर के समान चलने वाले घोड़ सवार ने उछल कर उसको अपने भाले पर रोक लिया और शेर हाथी पर न आ सका किन्तु भूमि पर गिर पड़ा। दूसरे वार में भाले वाला सवार भाले का छोड़कर तलवार लेकर शेर के ऊपर झुका। उसके हाथों में आश्चर्य का बल था, तुरन्त ही शेर की गर्दन कट कर दूर जा पड़ी। उसी समय गुलाबसिंह के तेज हाथों ने उस के कान और पूछ को काट लिया लिखने में देर लगती है परन्तु उस काम में कठिनता से चार मिनट लगे होंगे। जब शेर मर चुका, कान और पूछ हाथ में लिए हुए सवार जिस ओर से आया था, उसी ओर दौड़ कर अजीतसिंह के साथ हो लिया, और किसी को पता भी नहीं हुआ कि किस ने इस वीरता के साथ शेर मारा है।

शेर के मरने पर चारों ओर से जय जय की ध्वनि आरम्भ हुई। सब लोगों ने अपने अपने स्थान से आकर राना के हाथी को घेर लिया जो घाव खाने व रुधिर के बहने से दुःखी था। राना दूसरे हाथी पर सवार हुआ, सरदारों ने कहा "ईश्वर ने आज बड़ी दया की और हम सब लोगों की जान में जान आई।" जब सब धन्यवाद दे चुके तो राना ने पूछा—"वह कौन था ? जिस ने आज मेरे प्राणों की रक्षा की है। उचित यह है वह मेरे पास आये, मैं उस को भली भांति

पारितोषिक दूंगा।" परन्तु मारने वाला निकट नहीं था और वह अपने आप प्रगट नहीं करना चाहता था। राना ने थोड़े समय तक उपेक्षा की। निदान समय पाकर सब पाखण्डी दरबारी अपने अपने प्रेमियों के नाम बताने लगे। परन्तु राना ने कहा—"नहीं मैंने उस को जाते हुए देखा है, ठीक ठीक तो नहीं कह सकता। परन्तु उस के पहिचानने में मुझे कठिनाई न होगी। उस के मुख का सौन्दर्य्य मेरे नेत्रों में बसा है।" राना की बात सुन कर सब चुप हो गये। फिर किसी ने विशेष बात चीत करने का साहस नहीं किया। सवारी भवन की ओर चली, राना द्वार पर आकर उतर पड़ा और आज्ञा दी कि एक एक मनुष्य मेरे पास से होता हुआ भीतर चला जाय। सब ने बारी बारी से राना के सामने होते हुए दुर्ग के भीतर प्रवेश किया। जब गुलाबसिंह जाने लगा। राना ने उस की आकृति देख कर पूछा—"राजपूत! क्या शेर का संहारकर्त्ता तू है?" गुलाबसिंह ने सिर नीचे झुका कर कहा—"जिस को श्रीमान् कहें वही शेर को मार सकता है। शेर का जीवन अथवा मृत्यु आप की आज्ञा में है राना बोला "मैं जानता हूं। शेर को तेरे ही हाथ ने भूमि पर सुलाया है। ठीक मैं कह नहीं सकता। क्योंकि दौड़ने वाले घोड़े की तीक्ष्णता ने मुझ को भली भांति पहिचानने का समय नहीं दिया था।"

अजीतसिंह निकट था। बोला "धर्म्मावतार! शेर के

कान कटे हैं और पूछ नहीं है, इस से अनुभव होता है कि मारने वाले ने उन को प्रमाण के लिए अपने पास रक्खा होगा।" राना को और भी आश्चर्य हुआ "तू ने तो अब तक शेर को देखा तक नहीं फिर कैसे इस बात को जानता है। तू ने शेर को कदापि नहीं मारा।" अजीतसिंह लज्जित सा हो गया "श्रीमान्! मैं शेर का संहारकर्त्ता नहीं हूं परन्तु शेर का संहारकर्त्ता वह होगा जिसके पास कान और पूछ होंगे। राना ने कहा मैं भूल गया था कि यह तेरा बहनोई और भेद का जानने वाला है, जा और शेर की पूछ और कान को ले आ। गुलाबसिंह ने उसी समय अपने घोड़े के ज़ीन के नीचे से उन्हें निकाल कर महाराना के सन्मुख रख दिया। राना बोला, राजपूतो! तुम भले और वीर पुरुष मालूम होते हो, आज से तुम दोनों मेरे साथ रहा करो। मैं तुमको अपना शरीर का रक्षक नियुक्त करता हूं। और आज की सेवा के लिए मैं गुलाबसिंह को पारितोषिक दूंगा।

राना भवन में आया, वहां पहुंच कर उस ने प्राण के बचने की खुशी में तुला दान किया और गुलाबसिंह को भी बहुत सा पारितोषिक दिया। यद्यपि यह दोनों राजपूत एक ही साथ रहते थे परन्तु रात्रि के समय उनको पृथक रहना पड़ता था। अजीतसिंह तो रात्रि को दरबार में रहता था। गुलाबसिंह राना के शयनगृह पर नियुक्त था। दोनों की देखने में तो दशा अच्छी थी, व्ययार्थ पूरा रुपया मिलता

था, निर्वाह भली भांति होती थी परन्तु दोनों हर समय चिन्ता की अग्नि में जला करते थे।

वर्षा ऋतु में उन का विवाह हुआ था । बारह महीने व्यतीत हो गए परन्तु सेठ के रुपयों का कहीं प्रबन्ध न हो सका। बीस सहस्र रुपयों का तुरन्त मिल जाना कोई सामान्य बात नहीं थी। दूसरे वर्ष फिर वर्षा ऋतु आई, रात्री के समय आकाश में खूब काली घटा छाई हुई थी, बिजली चमक रही थी, वायु प्रबल वेग से चल रही थी। गुलाब तो रनिवास के द्वार पर था, अजीत राना के साथ था। राना ने कहा राजपूत ! तू जाकर शयन कर, मैं भीतर रनिवास में जाता हूं। यह कह कर राना जयपुर की रानी के महल में चला गया। द्वार पर गुलाब बैठा था, उसने नमस्कार किया। जब राना भवन के भीतर चला गया तो गुलाब अपनी दशा पर विचार करता हुआ उस समय विरह के लहजे में दबे शब्दों से मल्लार के राग में गाने लगा:—

आली रिम झिम बादर बरसे—

बादर गरजे दामिन दमके, रहि रहि मेरा जीया तरसे।
मोर पपिहरा बोलन लागे, विरहिन हिया दुख गरसे ॥

अजीतसिंह राना से विदा हो कर अपने निवास की ओर जा रहा था, उसने गुलाब के हृदय वेधक राग को सुना। दिल में सांप लोटने लगा, उसने भी उसी राग में उत्तर देना

उचित समझा ताकि गुलाब को मालूम हो जावे कि अजीत-सिंह उसकी ओर से अचेत नहीं है।

बरसत घरण अखंडित धारा, बात छिपी नहीं हर से।
कर्म की बात प्रबल आली, जानी कैसे पियु पद परसे॥
आली रिम झिम बादर बरसे०

गुलाब ने अजीत के राग को सुना। उसी समय उस ने गहरी सांस ली। सच है, भाग पर किसी का वश नहीं है।

जगतसिंह की जयपुरी रानी बहुत बुद्धिमान और चतुर थी ; दोनों गाने वालों के राग की भनक उस के कान में पड़ी। उस ने राना से कहा "मेरी समझ में आता है कि यह दोनों राजपूत जो तुम्हारी सेवा में रहते हैं स्त्री पुरुष हैं और यह मनुष्य जो रनिवास के पहरे पर रहता है अवश्य स्त्री है। कोई कारण है जिस हेतु यह एक दूसरे से नहीं मिलते और दिल ही दिल में कुढ़ते हैं। राना खिल खिला कर हंसा, "खूब तुम को अच्छी दूर की सूझी, यह साले बहनोई हैं, सदा से एक दूसरे के साथ रहते हैं आज यह मनुष्य यहां पहरे पर है नहीं तो दोनों के बीच ऐसा गहरा प्रेम है कि वह कभी अलग रहना नहीं चाहते।"

रानी ने कहा महाराज ! आप जो कुछ कहते हैं सच होगा, परन्तु मेरी बात भी मान लीजिए, उन की परीक्षा लीजिए आप ही सच झूठ प्रगट हो जावेगा।

राना को आश्चर्य हुआ, अजीतसिंह अभी दूर नहीं गया था, उस ने उसी समय उस को और गुलाबसिंह को अपने भवन में बुला भेजा। दोनों को आश्चर्य हुआ कि क्या कारण है! अन्त में जब राना के सामने जाकर प्रणाम किया तो राना ने पूछा गुलाब और अजीत! तुम यह बताओ तुम दोनों पुरुष हो या कोई तुम में से एक स्त्री है। दोनों चुप, क्या उत्तर देते। राना ने फिर वही प्रश्न किया "तुम बोलते क्यों नहीं? जो तुम को दुःख हो कहो, जो मेरे बस में होगा तो अभी इसी समय में उस को निवारण कर दूंगा। लज्जा व भय की कोई आवश्यक्ता नहीं है"। अजीतसिंह ने समझा परमात्मा ने दया की है, दुःख के लोप होने का समय आगया। उसने राना को सिर झुका कर उत्तर दिया कि हे अन्नदाता! आप अपने दासों के माता पिता हो आप से कोई भेद छिपा नहीं रह सकता। उस के पश्चात उसने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

राना अजीत को उस समय कुछ उत्तर नहीं दिया दासी को बुला कर कहा, देख! यह बाई जो पुरुष का वेष पहिने खड़ी है मेरी पुत्री है, इस को भीतर लेजाकर स्त्रियों के वस्त्र पहिना दो और पृथक भवन में रहने के लिये स्थान दो और हर प्रकार से उस के सुखादि का प्रबन्ध कर दो "राजबाला राना की आज्ञा को सुन कर उसी समय लज्जा से सिर नीचा किये हुए भवन में चली गई। रानी ने बहुत से

वस्त्र आभूषणादि पहिराने के निमित्त दे दिये। जब वह भीतर चली गई, राना ने अजीत से कहा "मैं तेरे पिता प्रपिता के नाम को भली भांति जानता हूं"।

धन्य है तेरे प्रण को, मैंने आज तक अपने जीवन में ऐसा योगी नहीं देखा था, तू मनुष्य नहीं है देवता है, जा इसी समय अपनी स्त्री से बात चीत कर।

रात्री के समय किसी को नींद नहीं आई। राना की दया ने उन के कुम्हलाय हुए दिलों को कमल के समान खिला दिया। जब प्रातःकाल का समय हुआ, बीस सहस्र रुपया ब्याज सहित और एक सांडनी अजीतसिंह के हवाले किये गये। वह उसी समय जैसलमेर के सेठ के यहां गया, और उसका रुपया चुका दिया। एक वर्ष से अजीतसिंह का किसी को पता नहीं था, सेठ अपने रुपयों की ओर से निराश हो चुका था। परन्तु उस को दुःख नहीं था, क्योंकि अजीतसिंह के पिता से वह बहुत कुछ प्राप्त कर चुका था, रुपया पाकर वह अचम्भित हुआ।

रुपया देकर वह उदयपुर लौट आया, और राना के पांव पर गिर पड़ा "अन्नदाता तुम्हारे कारण हमारी लाज रह गई"।

राना ने राजबाला को प्राणरक्षक देवी की पदवी दी और वह उदयपुर में इसी नाम से विख्यात थी। वह जब कभी

राना के भवन में उस के होते हुए आती राना उस को पुत्री कहकर पुकारता था। स्त्री पुरुष दोनों उस के अनुगामी थे वह उसी प्रकार उन दोनों से मिलता था, मानो वह स्वयम् उन के लड़के थे। कुछ समय पीछे उन के निवास के निमित्त नया भवन बनवा दिया गया और उनको जागीर भी दी गई

यह राजबाला के जीवन का संक्षिप्त वृत्तान्त है, यह कोई कल्पित कथा नहीं है किन्तु सच्चा इतिहास है इस में कोई झूठ से काम नहीं लिया गया है, न किसी प्रकार की मिलावट है। एक समय था जब इस प्रकार की पवित्र आत्माएं इस देश में उत्पन्न होती थीं। उन की सच्ची प्रतिज्ञा करने का यह ढङ्ग था। आजकल क्या दशा है? औरों को तो जाने दीजिए, जिन्हें धार्मिक तथा आत्मिक नेता कहलाने का घमण्ड है, जो नेता शब्द पर प्राण देने को तैयार हैं, प्रातः से सायं तक अपनी बातें सुनाते रहते हैं, न उन को अपनी बात का ध्यान है न प्रतिज्ञा का स्मरण है, इन्द्रियों के दास बने हुए हैं यह दृष्टान्त है हमारी राष्ट्रीय सचाई का।

परमात्मन्! हम पर दया करें कि हम में ऐसी आत्माएं फिर उत्पन्न हों जो इस कथा के अजीत व राजबाला की न्याईं सच्चाई के लिये जीवन तक न्योछावर करने में संकोच न करें। राजबाला! तेरा साहस धन्य था, देवी! ईश्वर करें हमारी बहनें तेरा चरित्र पढ़ कर और सुन कर सत्य के मार्ग को ग्रहण करें क्योंकि सबसे बढ़ कर कोई अन्य मार्ग नहीं है।

८—मुक्ता।

शूरा नाम धराय के, अब क्यों डरपै वीर।
मंड रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥१॥
शूरा नाम धराय कर, डर सों पीठ न फेर।
रणभूमि में मंड रहे, कर दे बैरी ढेर ॥२॥
शूरा नाम धराय कर, कर नहीं जीवन आश।
सिर साहिब को सोंपकर, कर सतलोक निवास ॥३
साध सती और सूरमा, ज्ञानी और गजदन्त।
पाछे कबहूं न फिरैं, जो युग जाय अनन्त ॥४॥
साध सती और सूरमा, इनकी गति मति पूर।
जिया हुलसै हृदय सुखी, मुखड़े बरसत नूर ॥५॥
साध सती और सूरमा, लड़े धनी के हेत।
टुकड़े टुकड़े हो रहें, तब हूं न छोड़ें खेत ॥६॥
लोहे से लोहा बजे, खड़ खड़ बजे जंजीर।
सन्मुख काल कहा करै, जब रण चढ़ा कबीर॥७॥

मुक्ता चित्तौड़ के राजा के मामा अमरसिंह चौहान की पुत्री थी। अमरसिंह अपने परिवार सहित चित्तौड़ में रहता था। वह बड़ी सुन्दर और स्वभाव की चंचल थी। पिता ने उस के प्यार का नाम मोती रक्खा था। मुक्ता और मोती का भावार्थ एक ही है और इस में सन्देह नहीं कि इस शूरवीर और साहसी स्त्री में इस प्रकार की चमक थी जो मोती और मुक्ता में पाई जाती है। सारा राजस्थान उस के सौन्दर्य की प्रशंसा से गूंज रहा था। उस की माता कनक रोहनी कहलाती थी। जब तक माता जीती रही मुक्ता उस की आंखों का तारा बनी रही। जब उस का देहांत हो गया, पिता ने अपनी गोद में लड़की को पाला और क्योंकि वह सदैव पिता के संग रहती थी उस में स्वयं ही क्षत्रीपन के गुण विकसित हो गये थे। तलवार चलाना, शिकार मारना, चौगान खेलना और शब्द को सुन कर तीर चलाना उस के दिल बहलाव के काम समझे जाते थे। इन गुणों के अतिरिक्त उस की बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी और वह धर्म्म कर्म को भली प्रकार समझती थी। पिता पुत्री की बुद्धिमत्ता को देख कर प्रसन्न होता था और हर प्रकार के कार्य्यों में उससे परामर्श लेना उचित समझता था और कोई काम उस की सम्मति के बिना नहीं करता था।

केसरीसिंह चित्तौड़ के राजा का चचेरा भाई था और कई कारणों से अमरसिंह का शत्रु बन गया था। यहां तक

कि वह एक दूसरे का प्राण लेने को तत्पर थे मुक्ता इस बात को जानती थी परन्तु अपने पिता की बड़ाई के विचार से उसने इस विषय में कोई सम्मति नहीं दी थी।

एक दिन का कथन है मुक्ता शिकार के वस्त्र पहने हुए अमरसिंह के साथ शिकार खेलने गई हुई थी। जंगल बहुत घना था, अमरसिंह और मुक्ता ने दोनों घोड़ों की बाग उठाई और उस स्थान पर पहुँचे जहां शेर अधिक रहते थे। यह बेखटके चले गये क्योंकि दोनों को अपने तीर व नेज़ा चलाने पर भरोसा था। परन्तु ऐसा समय हुआ कि अमरसिंह का घोड़ा पीछे रह गया और मुक्ता आगे बढ़ गई। जंगल का वह भाग विशेष कर जन शून्य था और एक शेर निकट ही गर्ज रहा था। शेर की गर्ज सुनकर मुक्ता एक वृक्ष के नीचे ठहर गई और इधर उधर देखने लगी। उसके हाथ में तलवार थी, धनुष कन्धे से लगी हुई थी, उसका विचार था कि शेर को देखकर अपने तीर का निशाना बनाये परन्तु उसको अपने कन्धे से धनुष उतारने का समय नहीं मिला था, कि शेर तड़पता हुआ उसके ऊपर आ गया और उसने उछल कर घोड़े के सिर पर पंजा मारा। घोड़ा तो वहीं उसी समय घायल होकर मर गया परन्तु मुक्ता ने कूदकर शेर के गरदन पर तलवार चलाई और वह अलग जा गिरा; परन्तु गर्जता हुआ फिर मुक्ता के ऊपर फलांग मारने को ही था, ईश्वर आने मुक्ता की क्या

दशा होती कि इतने में एक राजपूत घोड़ा दौड़ाता हुआ उस ओर आ निकला और मुक्ता की दशा देख कर झटपट घोड़े से नीचे कूद पड़ा और घोड़ा उस राजपूतनी की सवारी के लिए देकर आप शेर के सन्मुख जा खड़ा हुआ। राजपूत भी बल का भण्डार था, उस के हाथ में नंगी तलवार थी, शेर फलांग मारने ही को था कि उसने उस पर तलवार चलाई और अपनी समझ में उसको बेकाम करके शीघ्र ही एक झाड़ी की ओट में छिप रहा।

मुक्ता आश्चर्य में पड़ गई और अपने प्राणों के रक्षक शूरवीर के साहस पर वाह वाह करने लगी। यद्यपि उसने राजपूत को अच्छी तरह नहीं देखा था और यह अवसर भी इतनी शीघ्रता का था कि किसी को विचार करने का समय नहीं मिल सकता था परन्तु एक ही दृष्टि से उस ने उस ही प्रतापशाली मुख को देख लिया। स्त्रियों की दृष्टि विद्युत् से भी अधिक तीव्र होती है। राजपूत की चाल ढाल और उस की चेष्टा मुक्ता की आंखों में खुभ गई। उस की पगड़ी की कलगी हवा में फर्रा रही थी, उससे मुक्ता ने समझा कि कोई सुशील और माननीय राजपूत है। उसका सुन्दर घोड़ा और सामान इत्यादि बता रहा था कि वह कोई सामान्य पुरुष नहीं है।

राजपूत तो झाड़ी में जा छिपा। शेर बुरी प्रकार घायल था, अब तीसरी बार वह फिर उछलने को था कि मुक्ता ने उस

की चेष्टा को भांप कर तलवार से उसको सदैव के लिए बेकाम कर दिया और आप खड़ी होकर विचारने लगी। इतने में अमरसिंह स्वयं घोड़े को दौड़ाता हुआ वहां आ पहुंचा। जब उसने देखा कि एक ओर मुक्ता का घोड़ा पड़ा है और दूसरी ओर शेर सिसक सिसक कर प्राण त्याग रहा है उस को आश्चर्य हुआ, क्योंकि शेर बहुत भयानक था। उसने समझा मुक्ता के घोड़े को मरा देख कर कोई मनुष्य अपना घोड़ा दे गया है। उसने पुत्री से कोई प्रश्न नहीं किया और न मुक्ता ही बता सकी कि उसको घोड़ा देने वाला कौन था। अमर सिंह ने झटपट लौटने की तैयारी की और मुक्ता भी उस के पीछे पीछे उसी घोड़े पर चढ़ी हुई नगर को वापस आई। यहां आकर उस ने पिता से सारा वृतान्त कह सुनाया।

अमरसिंह को अनुमान तो हो गया कि उसकी पुत्री की रक्षा करने वाला कौन मनुष्य था परन्तु उसने जान बूझ कर अपना मुख बंद रक्खा और उस दिन के पश्चात् इस विषय में उनके बीच में किसी प्रकार की बात चीत नहीं हुई।

अमरसिंह के हृदय में अपने शत्रु केशरीसिंह की शत्रुता की आग दिन प्रति दिन बढ़ती गई। केशरीसिंह भी स्वयं उसकी ताक में लगा रहता था। वह समय आजकल के समय से विशेष मूर्खता का समय था, हिन्दू मारन तथा उच्चाटन इत्यादि मंत्रों पर विश्वास रखते थे और मूर्खता के जाल में

फंसकर प्रायः यंत्र मंत्र के साधन में लगे रहते थे। जहां और प्रकार का वश नहीं चलता था वहां किसी तांत्रिक पंडित को बुलाकर पुरश्चरण कराते अथवा और इसी प्रकार के ऐसे ही उपाय करते थे। अमरसिंह में केसरीसिंह के सामना करने का बल नहीं था। इस लिए जब काली चौदश का दिन आया आधी रात के समय वह श्मशान भूमि में मंत्र सिद्ध करने के निमित्त चला ताकि उसकी सहायता से शत्रु का नाश करे। इस मूर्खता का भी कहीं ठिकाना है! परन्तु विश्वास भी संसार में अद्भुत वस्तु है। जब सब सो गए, वह दबे पांव उठा और जहां शव जलाये जाते थे वहां निर्भयता पूर्वक चला गया। वहां उसे एक और मनुष्य मिला जो उससे पहिले इसी वास्ते गया था। अमरसिंह को देख कर उसको क्रोध आया, वह शव की छाती पर बैठा हुआ मंत्र पढ़ रहा था। अमरसिंह का वहां पहुंचना था कि उसने अपनी क्रिया को भंग होता हुआ देखकर उस पर झपटा और कहने लगा। चाण्डाल! तेरे कारण मेरा काम बिगड़ गया, मैं अभी तुम को मार कर तेरी शव पर बैठ करके फिर मंत्र सिद्ध करूंगा। दोनों में गुत्थम गुत्था होने लगा। अमरसिंह डर गया, निर्बल आत्मा वाले मनुष्य अपने वास्ते स्वयम् ही आपत्ति सहेड़ लेते हैं, उसने उसका कंठ इस प्रकार दबाया कि वह सम्भल न सका और भूमि पर आ गिरा। वह उसकी छाती पर बैठ

कर कमर से छुरी निकाल कर उसको मारना ही चाहता था कि इतने में एक वीर राजपूत घोड़ा दौड़ाता हुआ वहां आ पहुंचा और अग्नि के उजाले में अमरसिंह की दशा देखकर घोड़े से नीचे उतर पड़ा और मारने वाले के हाथ से छुरी छीन कर बल क्रम से उसको हटा दिया। और अमरसिंह को उठा कर उसकी चेष्टा को देख कर कहने लगा अमरसिंह! यह श्मशान भूमि तुम्हारे रहने का स्थान नहीं है, यहां चांडाल और अघोरी रहते हैं। उठो महल में जावो, यह तलवार मैं तुम्हें देता हूं कि मार्ग में कोई मनुष्य फिर तुम पर आक्रमण न कर सके।

अमरसिंह से बात चीत करने के पश्चात् जब वह घोड़े पर सवार हुआ, उसकी दृष्टि एक सुन्दर स्त्री पर पड़ी जो हाथ में चमकती तलवार लिए हुए घोड़े पर सवार आ रही थी। उसकी तलवार इस प्रकार लप लपाती थी, मानों किसी शत्रु के रुधिर की प्यासी है! यह स्त्री और कोई नहीं थी अमरसिंह की पुत्री मुक्ता थी, वह अपने पिता की चाल ढाल सदैव देखा करती थी, जब उसने उसको आधी रात्रि के समय जाते हुए देखा स्वयम् पीछे पीछे चली आई ताकि आवश्यकता के समय उसकी सहायता कर सके।

नवयुवक सवार को देख राह कतराता हुआ निकल गया। मुक्ता भी थोड़ी दूर उस के पीछे चली और पुकार कर कहा

under control
the Ration ticket + say you

"धर्मिष्ठ राजपूत ! क्या तुम में इतना साहस नहीं है कि मुझ को अपनी कृतज्ञता प्रकाश करने का समय दे सको" राजपूत वहां ही खड़ा हो गया, मुक्ता उस के निकट जाकर कहने लगी "तुम ने दो बार हमारे ऊपर दया की, एक समय जंगल में भयानक शेर के पंजे से मेरी प्राण रक्षा की, आज मेरा पिता मारा गया होता परन्तु तुम्हारी कृपा से उसकी जान बची। इसका बदला तो मैं किसी प्रकार तुमको नहीं दे सकती परन्तु तुम चिन्ह स्वरूप मेरी अंगूठी लो, मैं तुम्हारी ऋणी हूं, तुम भाग्यवान् हो, कौन जाने मैं भी कभी तुम्हारे काम आ सकूं या नहीं, इसका निर्णय ईश्वर के आधीन है, यदि कभी युद्ध का समय हो तो इसकी सहायता से तुम मुझे अपनी सहायता के लिए बुला सकते हो।"

राजपूत ने आगा पीछा किये बिना अंगूठी को ले लिया और बड़े आदर से उसको अपने माथे से लगाया। उसके इस व्यवहार ने मुक्ता के चित्त में उसके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न की।

राजपूत मुख से कुछ नहीं बोला। अमरसिंह अपनी लड़की के शब्द को सुन कर उस ओर आया, इतने में वह तीसरा मनुष्य उनके देखते देखते दृष्टि से परे हो गया। उस को खुली बातचीत करने में संकोच था, इस वास्ते अमरसिंह को देखते ही उसने घोड़े के पैड़ लगा दी. यह जा वह जा दृष्टि से परे हो गया।

पिता और पुत्री दोनों ने चुपचाप भवन में प्रवेश किया। दीपक के प्रकाश में उसने तलवार के फल को देखा, उस पर मोटे अक्षर में लिखा था "यह वह तलवार है जो शेर का रुधिर पीती है।" अमरसिंह ने उसको उसी समय हाथ से फेंक दिया, और जब मुक्ता ने उन अक्षरों को पढ़ा समझ गई कि किस कारण यह तलवार उसके पिता को दी गई है; इस याद दिलाने से क्या प्रयोजन है परन्तु वह अपने पिता के भाव को पहचानती थी। उसने एक गहरी सांस ली और अपने चित्त की वृत्ति को थाम लिया।

केसरीसिंह चौहान और अमरसिंह राठौर चित्तौड़ की सेना के प्रतिष्ठित सरदार थे। अमरसिंह अब तक राज सम्बन्धी कार्य्यों को करता था। परन्तु केसरीसिंह उस से पृथक हो चुका था, और उसके स्थान पर उनका बुद्धिमान पुत्र काम करता था।

केसरीसिंह विशेष कर अपनी जागीर में रहता था। केवल कभी कभी वह अपना चित्त प्रसन्न करने के निमित्त अथवा सम्बन्ध के कारण चित्तौड़ आया जाया करता था। उस का पुत्र युद्धसिंह बड़ा बुद्धिमान सुशील और धार्मिक था। राना उस को हृदय से चाहता था और उस की वीरता और शौर्य्य की प्रशंसा भी किया करता था। उस ने युद्धसिंह को प्रायः चिन्ता में व्याकुल पाया और अपने सरदार की दशा

देख कर कभी कभी राना को चिन्ता हो जाया करती थी। वह चाहता था कि किसी प्रकार केसरीसिंह और अमरसिंह का परस्पर विरोध भाव दूर होजावे। अवसर हाथ नहीं आता था और उन लोगों के परिवार सम्बन्धी कार्यों में हस्तक्षेप करना राजधर्म के विरुद्ध था इस लिये चुप हो रहता था। उस के चित्त में कई वार विचार आया कि मुक्ता का विवाह युद्धसिंह के साथ करा दिया जावे। क्या आश्चर्य इस सम्बन्ध के कारण उन की शत्रुता दूर हो जावे। परन्तु केसरी और अमरसिंह की विचित्र दशा ने उस को कभी इस बात के कहने सुनने का अवसर नहीं दिया।

मुक्ता युद्धसिंह को चाहती थी, युद्धसिंह भी चित्त से उस का प्रेमी बन चुका था। परन्तु जहां बड़ों में ऐसी शत्रुता ठनी हो वहां सन्तान को चुप रहने के अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकता है। वह चित्त ही चित्त में एक दूसरे के निमित्त दुःखी थे। परन्तु कुछ कह नहीं सकते थे।

केसरीसिंह एक समय जब अपने इलाके से वापस आया उस को पता दिया गया कि अमरसिंह उस के मारने के लिए पुरश्चर्ण करा रहा है और श्मशान भूमि में जाकर मन्त्र सिद्ध करना चाहता है। केसरीसिंह के चित्त में विशेष क्रोध आया। इस सूचना ने उस के हृदय की अग्नि प्रज्वलित करदी, वह क्रोध को संभाल नहीं सका और किसी

प्रकार से अमरसिंह के भवन में आग लगवादी कि वह भीतर ही भीतर अपने परिवार समेत जल कर भस्म हो जावे। जब भवन में आग लगाई गई अमरसिंह और मुक्ता जागते थे उन्होंने शीघ्र २ सब को जगाया, किसी का प्राण घात नहीं हुआ परन्तु सारी गृहस्थी जल कर भस्म होगई।

अमरसिंह का भवन बहुत ऊंचा था। जब आग प्रचण्ड हुई राना ने समझा अमरसिंह और मुक्ता दोनों भस्म हो गए होंगे। उस को केसरीसिंह पर बड़ा क्रोध आया और उसे दण्ड देने का पूरा पूरा निश्चय कर लिया। उस ने युद्धसिंह को उसी समय बुला भेजा, और कहने लगा "युवक राठौर! यह क्या व्यवहार है, कितने शोक का विषय है कि मेरे रहते रहते राजधानी में यह अन्धेर हो रहा है और एक प्रतिष्ठित सरदार की यह दुर्गति की जारही है। दीपक के तले अन्धेरा! तू बता तेरी क्या सम्मति है, क्या करना चाहिये" युद्धसिंह ने उत्तर दिया "अन्न दाता! आप जानते हो मैं कैसा विवश हूं, मुझ से आप क्या पूछते हो! जो चित्त में आवे वैसा कीजिए, मेरा जीवन तथा धन आदि सब कुछ आप का ही है। मैं क्या करूं विवश हूं" यह कह कर राना को प्रणाम करके वहां से चला गया।

मुक्ता ने देखा, केसरीसिंह ने उस के पिता के साथ ऐसा अत्याचार किया जो मनुष्य कभी एक दूसरे के साथ नहीं

करता है, वह उसी समय घोड़े पर सवार हुई। पिता समझ गया, वह क्या करना चाहती है इसलिए उसने अपने मनुष्यों को एकत्र किया। केसरीसिंह को क्षण क्षण की दशा मालूम होती थी। वह भी तैयार होकर आ गया और अमरसिंह को जीता जागता देख कर वह अपने आपे से बाहर हो तलवार ले कर पिल पड़ा। अमरसिंह की ढाल कट गई, सिर पर बड़ी चोट आई और अधमरा होकर भूमि पर गिर पड़ा। यदि मुक्ता उसकी सहायता पर न आ गई होती तो उसी समय उसका अन्त हो गया होता। मुक्ता तलवार चमकाते हुए, केसरीसिंह के सामने आई, वह उस की चेष्टा देख कर सहम गया। उस ने केसरीसिंह के देखते देखते उस के सब कुटुम्बियों को मिट्टी में मिला दिया जिधर झुकी सब को साफ कर दिया। केसरीसिंह का साहस जाता रहा, उस ने समझा कि यह कोई विचित्र देवी है जो अमरसिंह की ओर से युद्ध कर रही है। उस के निकट के सम्बन्धी मर चुके थे, वह मन में डरा कहीं ऐसा न हो युद्धसिंह के साथ उस की मुठभेड़ हो जावे और वह निष्प्रयोजन मारा जावे।

यद्यपि मुक्ता की सहायता ने केसरीसिंह को अमरसिंह पर दूसरा वार करने का समय नहीं दिया। परन्तु अमरसिंह के मरने में कोई कसर नहीं रही। साथियों ने उस को एक स्थान पर जाकर लिटा दिया। जहां वह लेटा हुआ प्राण

निकलने की दशा में था तो मुक्ता ने अपने पिता की दशा देखी तो उसका रुधिर उबलने लगा। दूसरों को छोड़कर वह केसरीसिंह के सन्मुख आ गई। प्रत्युपकार इच्छुक बूढ़े! मेरे सामने आकर अपना मुख दिखा मैं काल की मूर्ति बन कर तुझ को खोज रही हूं, यह कह कर उस ने केसरीसिंह पर तलवार चलाई, वह चतुर और बुद्धिमान् था उस की चोट से बच रहा। यह फिर विद्युत् की न्याई उस पर गिरी "तू मृत्यु से बच कर कहां जाती है, यदि तेरे सहस्र सिर हो जावें तो भी मैं इसी तलवार से काट गिराऊंगी, यदि तू सहस्र हाथ वाला क्यों न बन जाय, परन्तु मेरे हाथ से नहीं बचेगा। तू ने समझ लिया था कि भवन जलाने से सब मर जावेंगे, मूढ़! तू ने वृथा अपना नाम केसरी रक्खा।" यह कह कर उस ने तलवार चलाना आरम्भ किया, केसरी सर्वदैव बचना चाहता था परन्तु यह उसी समय दूसरी ओर से वार करती थी। मुक्ता काल के समान थी, उस की चाल प्रचण्ड-वायु की न्याई थी, उस की तलवार की चमक विद्युत् को मात करती थी, और जब वह तलवार चलाती थी तो बादल की गर्ज के समान शब्द होता था। केसरीसिंह ने कितने युद्ध लड़े थे, कितने वीरों को परास्त किया था परन्तु आज तक ऐसे शूर और चतुर शत्रु से पाला नहीं पड़ा था। उस की ढाल चूर चूर हो गई। वह आश्चर्य में था कि किस प्रकार

अपनी रक्षा करे। इतने में अन्तिम समय मुक्ता उछली और उसकी तलवार केसरीसिंह के सिर पर गिरी जैसे वन के वृक्ष पर विद्युत् गिरती है, और उस ने उस के दो टुकड़े कर दिये, जब केसरीसिंह भूमि पर गिरा अमरसिंह उस को देख कर आनन्दित हो गया "धन्य है पुत्री ! तू धन्य है ! इस समय जो तूने काम किया है। वह पुत्री से नहीं हो सकता है, अब मैं आनन्द से मरता हूं" मुक्ता अपने पिता की ओर झुकी, परन्तु पुत्री के आने से पहिले उस ने प्राण त्याग दिये।

राना को उस लड़ाई की सूचना दी गई। उसको यह नहीं मालूम था कि दोनों शत्रु संसार से चल बसे। उस ने समझा केसरीसिंह घायल होगा उसे चल कर उठा लाना चाहिए। राजा की सेना प्रबन्ध के निमित्त उस स्थान पर आई और अमरसिंह का भवन घेर लिया गया। भवन जल रहा था, एक ओर अग्नि अपना कार्य्य कर रही थी, दूसरी ओर मुक्ता शत्रु की सेना को नष्ट करने में लगी हुई थी। राज सेना को देख कर उस ने समझा शत्रु की सहायता के निमित्त यह सेना आई है, भवन के द्वार पर बैठ कर उस ने भ्रम से तीर बरसाना आरम्भ किया। कितने मनुष्य घायल हुए, कितने मारे गए, अन्त में यह दशा हुई कि दोनों ओर से तीरों का बरसना आरम्भ हो गया। अमरसिंह के मनुष्य दिल खोलकर

लड़े। मुक्ता एड़ी से चोटी तक रुधिर से लथ पथ हो गई थी, परन्तु एक क्षण भर के लिए भी उसने तीर कमान को आराम नहीं लेने दिया। महाराना की सेना कोई बड़ी संख्या में नहीं आई थी, उसकी बीरता देखकर सब को आश्चर्य हुआ और भय से कांपने लगे। राना उसको जीवित देखकर चकित था, वह समझता था कि मुक्ता आग से कदाचित् नहीं बची होगी। अन्त में बड़ी कठिनता से उसको विश्वास दिलाया गया कि किसी को उसके साथ लड़ने का विचार नहीं है, तब जाकर उसने कमान को नीचे रख दिया, परन्तु उस समय तक राज सेना के मनुष्य प्रायः सब काल का ग्रास बन चुके थे।

जब इस लड़ाई झगड़े का निर्णय हो चुका तो उसने आज्ञा दी कि तीन चिता तैयार की जावें। एक पर केसरीसिंह दूसरे पर अमरसिंह के शव को रक्खा गया। तीसरी चिता पर लकड़ियों का बहुत बड़ा ढेर किया गया। मुक्ता ने स्वयम् उन शवों को अपने हाथ से चिता पर रक्खा और स्वयम् ही कठोर हृदय कर उन में अग्नि प्रवेश किया, और जब वह जलने लगी तो तीसरी चिता में भी अग्नि प्रवेश की गई उस के पश्चात् उसने पहले दो चिताओं की परिक्रमा करके फिर स्वयम् उस तीसरी चिता में कूद पड़ी।

अभी उसकी देह में आग नहीं लगी थी कि युद्धसिंह चिता के सामने आ पहुंचा, मुक्ता बोली, सिंह राजपूत ! भला

हुआ तू मेरे सामने नहीं आया, देख वह मेरे पिता की चिता जल रही है, और साथ ही दूसरी मेरे श्वसुर की चिता जल रही है। तूने मेरी और मेरे पिता के प्राणों की रक्षा की थी, तुम्हारे पिता ने मेरे पिता का प्राण हरा मैंने उसका बदला लिया। क्षत्री धर्म कठिन है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। मैं तेरी ऋणी हूं अन्त समय तक तुझ को नहीं भूली हूं और यदि मेरा संकल्प सत्य है तो अग्नि में पवित्र हो कर फिर तुझ से मिलूंगी यह कह कर उस शूरा स्त्री ने युद्धसिंह को प्रणाम किया और दूसरे क्षण में अग्नि की प्रचंड ज्वाला उसके शरीर से लपटने लगी और थोड़े समय में ही उसका शरीर जल कर भस्म हो गया।

जिस समय मुक्ता जल रही थी, युद्धसिंह की आंखों से आंसू बह रहे थे। जब सब कुछ हो गया और अग्नि अपने चारों ओर सब को भस्म करके अपना कर्तव्य पालन कर चुकी। वह उछल कर घोड़े की पीठ पर बैठ गया और सबकी दृष्टि से अलोप होगया और फिर किसी ने उसको नहीं देखा, कोई नहीं कह सका था कि वह कहां गया और उस का अन्तिम परिणाम क्या हुआ। किसी का विचार था कि उसने अपने को साधुओं के भेष में छिपा रक्खा था कोई कहता, कि उसने आत्मघात किया। जितने मुख उतनी बातें किन्तु सच यह है कि किसी को उसका आज तक पता नहीं लगा।

९—इच्छन कुमारी।

शूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
घाव सहै छाती दहे, कबहुं न छोड़ै खेत ॥
साधु सती और सूरमा, इनके सम कोई नांहि।
अगम पंथ में पग धरैं, मौत देख भय नांहि ॥
कायर मुख नहीं देखिये, दर्शन कीजे शूर।
शांत चित आनन्द मन, मुखड़ा बरसै नूर ॥
रण में तप में प्रेम में, कायर का क्या काम।
साधु सती और सूरमा, सोहैं बीच संग्राम ॥
कबीर सौदा राम का, सिर बिन कबहूं न होय।
बात बनाई जग ठगा, साधु कभी न होय ॥

जितेषी प्रकार चन्द्रावती नगर का राजा था। इच्छन कुमारी उस की पुत्री थी। वह इतनी सुन्दर थी कि उसके सौन्दर्य्य की चारों ओर धूम मची थी। बुद्धिमान, सुशील, धर्मात्मा, वीर, बहादुर, तेजस्वी, कौन से गुण थे जो इच्छन कुमारी में नहीं थे। जब यह अभी छोटी अवस्था की ही थी एक दिन पिता ने हंसते पूछा, पुत्री!

तेरा विवाह किसके संग करें ? उस समय सोमेश्वर चौहान अजमेर नरेश का राजकुमार पृथ्वीराज अपनी वीरता और शौर्य्य में विख्यात था। इच्छन ने कहा "मैं तो अजमेर के राजकुमार से विवाह करूंगी"। जितैषी मुसकराया। "बहुत अच्छा, इसी के संग तेरा विवाह होगा। परन्तु यदि उसने स्वीकार नहीं किया तो क्या होगा"। इच्छन बोली क्या कोई राजकुमार किसी राजकुमारी की बात टाल सकता है,यदि विवाह न हुआ तो फिर क्या मैं कुंवारी रहूंगी। जितैषी ने बिना आगा पीछा सोचे उसी समय पृथ्वीराज के पास नारियल भिजवाया, भाट ने उससे जाकर कहा "इच्छनकुमारी की अभिलाषा है कि तुम्हारी पटरानी बने, वह किसी अन्य राजपूत से विवाह करना नहीं चाहती"। सोमेश्वर ने जितैषी की विनय को स्वीकार कर लिया और इच्छन का फलदान पृथ्वीराज के संग कर दिया गया। अवस्था अभी छोटी थी इस लिये विवाह सम्बन्धी कार्य की आवश्यकता नहीं समझी गई।

जिस समय का यह वृत्तान्त है, उसी समय गुजरात का राजा भोला भीमदेव अपनी वीरता, ऐश्वर्य्य और प्रतिष्ठा के लिये राजाओं में प्रसिद्ध था। उस की राजधानी अन्हलवाड़ा पाटन थी। उसने सुन रक्खा था कि इच्छनकुमारी से विशेष सुन्दरी कोई स्त्री नहीं है। उसने गुप्त रीति से अपने भाट को हाल जानने के निमित्त चन्द्रावती नगर में भेजा

कि किसी प्रकार इच्छनको देखकर उसका वृत्तान्त सुनाये। वह थोड़े दिनों के पश्चात् लौट कर आया, भोला भीमदेव ने पूछा कहो क्या देखा ? भाट ने सिर झुकाकर उत्तर दिया महाराज कुछ न पूछिये मुझे आपने जिसे देखने के निमित्त भेजा था, उस के रंग रूप का वर्णन नहीं हो सकता। चंद्रमा उस सूर्य को देख कर लज्जित होता है, उसके नेत्रों को देखकर कमल अपनी पंखड़ियों को समेट लेता है, ऐसी सुन्दर व सुशील स्त्री संसार के किसी भाग में नहीं है। वह सचमुच संसार में एक ही है और वह इस योग्य है कि आप के रनिवास को सुशोभित करे।

भीमदेव चित्त में बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने मंत्री अमरसिंह नामी जैनी को जिस ने "अमरकोष" बनाया है, जितैषी प्रमार के पास दूत बनाकर भेजा, जितैषीने बड़े आदर सम्मान पूर्वक मंत्री का स्वागत किया और दरबार में उसी दिन आने की आज्ञा दी। अमरसिंह ने कहा "महाराज गुजरात नरेश चाहता है कि आप उसको अपना लड़का बनानेका सम्मान दीजिये"। जितैषी समझ गया औरकहने लगा "भीम देव के साथ सम्बन्ध करने में हमारे कुल की बड़ी प्रशंसा है, परन्तु शोक है इच्छन कुमारी का फलदान चौहान राजकुमार के संग हो चुका है अब मैं क्या कर सकता हूं"।अमरसिंह ने उत्तर दिया " राजन् ! ऐसा न हो कि इस नकार

का परिणाम युद्ध हो अथवा रुधिर बहे, और चन्द्रावती के नाश का समय आजावे। जितैषी बोला मैं तुमको इस बात का क्या उत्तर दूं। तुम भीमदेव को जाकर कह दो कि एक जगह जब पुत्री का सम्बन्ध हो चुका तो दूसरे स्थान पर कैसे किया जा सकता है, बात तो नहीं बदली जासकती। यदि अज्ञान-वश कोई विरोध पर तुल जावे तो मैं भी क्षत्री हूं, हाथों में चूड़ियां नहीं हैं, तलवार भी चलाना जानते हैं, अपनी रक्षा कर लेंगे। हम यह कभी नहीं चाहते कि किसी प्रकार का अन्याय हो। तुम्हारे सन्देश का संक्षेप से उत्तर यह है, कि प्रमार की पुत्री का सम्बन्ध एक स्थान पर हो चुका है हम किसी प्रकार अपने प्रण को नहीं छोड़ेंगे और न अपनी बात में कोई त्रुटि आने देंगे।

अमरसिंह की आंखें क्रोध से लाल हो गईं परन्तु उसको उत्तर देने का समय कहां था! वह उलटे पांव लौट गया।

जब भीमदेव ने सुना कि उसकी विनय स्वीकार नहीं की गई उसने उसी समय लड़ाई की इच्छा प्रकट की। तैयारियां होने लगीं, नवीन रंगरूट विशेषता के साथ भरती किये गये। जितैषी निर्बल था और चंद्रावती एक छोटी सी रियासत थी। उसने महाराजा सोमेश्वर अजमेर नरेशको सहायता के निमित्त बुला भेजा। जिस समय भीमदेव चंद्रावती पर चढ़ आया उसी समय सोमेश्वर को सूचना मिली कि गौर का बादशाह

शहाबुद्दीन बड़ी सेना लेकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के निमित्त आ रहा है, और वह दर्रा के आगे तक बढ़ आया है। एक ओर हिन्दुस्तान की सहायता का विचार और दूसरी ओर अपनी पुत्र बधु की प्रतिष्ठा की रक्षा की चिन्ता थी। कहे तो कठिन न कहे तो कठिन, क्या करे और क्या न करे। अन्त में बहुत विचार के पश्चात् उसने अपने चित्त में ठान लिया और यह निश्चय कर लिया कि कुल मर्य्यादा का विचार परम आवश्यक है। परन्तु वह शहाब-ुद्दीन की ओर से भी अचेत नहीं था। आप तो सेना लेकर चंद्रावती की सहायता पर चला गया और अजमेर में हर प्रकार की तैयारी करने की आज्ञा देदी।

पृथ्वीराज उस समय दिल्ली के सूबा का अधिकारी था और वह वहां का सूबेदार था। उस के पिता को चंद्रावती जाने की सूचना मिली, वह बैठा हुआ अपने मित्रों से सलाह कर रहा था कि हम को क्या करना चाहिए, इतने में एक मारवाड़ी ब्राह्मण सन्मुख उपस्थित किया गया। उस ने राज-कुमार के हाथ में एक पत्र रख दिया। पृथ्वीराजने पत्रको लेकर चंद्रवारुट नामी एक दरबारी के हाथ में पढ़ने को दिया। उसने कहा कि आप ही पढ़िये, पृथ्वीराज ने स्वयं पत्र को पढ़ कर सब को सम्बोधन कर कहा, मित्रो! महाराज सोमेश्वर जितेषी परमार की सहायता के निमित्त चंद्रावती चले गये हैं। र

एक ओर की यह भयजनक सूचना है, दूसरी ओर शहाबउद्दीन गौरी लड़ाई करने के निमित्त आ रहा है। पिता जी की आज्ञा है कि मैं अजमेर के बचाने का काम करूं, परन्तु इधर परमार की राजपुत्री मुझको अपनी सहायता के निमित्त बुला रही है और वह मेरी धर्म्म पत्नी है, लड़ाई का कारण भी वही है। उस पत्र का सारांश यह था—

कमलावती के वीर पुत्र! भीमदेव गुजरात नरेश ने चंद्रावती पर आक्रमण कर दिया है। जो नगर, ग्राम उसकी सेना की राह में पड़ा नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया, सब नगर निवासी त्राहिमान त्राहिमान कर भाग गये हैं। मेरे पिता में उसके सामना करने का पौरुष नहीं है, अब तक अजमेर से सहायता नहीं आई, पिता ने किसी विचार से नगर के बाहर अचलगढ़ मुझे भेज दिया है कि शत्रुओं के पंजे में न आ सकूं। इस प्रकार की लिखा पढ़ी उचित नहीं समझी जाती परन्तु ऐसा समय आ पहुंचा है कि लज्जा इत्यादि को उठा कर फेंक देना पड़ा है। मैं तो आप की दासी हो चुकी हूं, इसमें कोई सन्देह नहीं, आप समझ सकते हैं कि मैं कैसी आपत्ति में हूं। इस कारण यदि आप मुझे अपनी मान प्रतिष्ठा का कारण समझते हो तो मेरी प्रार्थना है कि तुम यदि दिल्ली में भोजन करते होवो तो अचलगढ़ में आकर पानी पियो, आप समय पर न पहुंचे तो पीछे कुछ नहीं हो सकेगा—

क्या वर्षा, जब कृषि सुखानी।

समय चूक, फिर क्या पछतानी॥

पत्र की लिखाई अथवा विषय साधारण था। लोग सुनकर फड़क गये। थोड़े समय आश्चर्य से एक दूसरे का मुख देखते रहे फिर पृथ्वीराज ने सम्बोधन कर कहा "वीर पुरुषो! अब सोचने विचारने का समय नहीं है। स्त्री की सहायता पर न पहुंचना कायरपन होगा। क्षत्री सब काम छोड़ कर स्त्री की सहायता की ओर ध्यान देते हैं। मैं चन्द्र और रामराय को लेकर अचलगढ़ जाता हूं, तुम अजमेर में जाकर उसकी रक्षा करो। हमारे पास पूरी सेना है, हम मलेच्छों का हर प्रकार से सामना कर सकेंगे, शेष सेना का कुछ भाग दिल्ली रहने दो ताकि पंजाब के प्रान्त पर शत्रु का सामना कर सकें। जब तक तुम कूच करते हुए अजमेर पहुंचोगे मैं भी इच्छनकुमारी को साथ लेकर वहां आजाऊंगा।

यह कह कर तीनों क्षत्री उसी समय उठ खड़े हुए, घोड़े कसे कसाये तैयार थे और जब यह उछल कर उन की पीठ पर आरूढ़ हुए वह वायु से बातें करते हुए अचलगढ़ की ओर चल दिये।

पति को संदेश पठाये हुए कई दिन व्यतीत हो गये। परन्तु ब्राह्मण लौट कर नहीं आया, न पृथ्वीराज ही पहुंचा। इच्छन कुमारी अचलगढ़ के दुर्ग में बैठी हुई विचार कर रही

थी, "शोक हमारा देश भी किस प्रकार नष्ट हो रहा है, समय था कि सब मिल कर देश रक्षा का कार्य्य करते परन्तु नहीं, अपने स्वार्थ के जाल में फंसे हुए एक दूसरे की जड़ को खोद रहे हैं। धर्म्म यह कहता है कि सब मिल कर अपनी रक्षा करें परन्तु इस की किसी को अभिलाषा नहीं। इस चाण्डाल को यह पता नहीं कि राजपूतनियों का विवाह दो बार नहीं होता। विवाह तो जिस के साथ होना था हो चुका। अब इस युद्ध से क्या लाभ हो सकता है। क्या इस युद्ध से मैं उस के हाथ आजाऊंगी ? राम ! राम ! इस मूर्खता की भी कोई सीमा है, ! परन्तु देखिये चौहान आता है कि नहीं, कौन जाने उस को मेरा प्रेम भी है ? प्रेम उद्भाव प्रथम हमारी ओर से हुआ है, ऐसे समयों में पुरुषों को प्रायः घृणा भी होती है। जो कुछ होना था हो चुका अब सोच करने से क्या प्रयोजन है देखिये मेरे पत्र का क्या परिणाम होता है, ब्राह्मण भी ऐसा जान कार नहीं है।

देखिये कब तक जवाबे, खतसे आंखें शाद हों।
रासता देखा नहीं, कासद भटकता जायगा ॥

इच्छनकुमारी रात दिन इसी प्रकार की बातें सोचा करती थी। हर समय उस को पृथ्वीराज के आने की आशा रहा करती थी। रात को अचेत सो रही थी, पिंजरे में तोते

ने पंख फड़फड़ाया वह चौंक कर उठ बैठी। क्या आगन्तुक आगये ! परन्तु उन को उस समय तक सूचना भी न मिली होगी क्योंकि ब्राह्मण देर से दिल्ली पहुंचा था। उस के चित्त को प्रत्येक समय चिन्ता का सामना रहा करता था, किसी प्रकार चित्त नहीं लगता था। कहां तो वह माता की आंखों की पुतली बनी हुई थी और सदैव उस के साथ रहा करती थी, कहां अब अकेले एक स्थान में कैद है। माना सहेलियां साथ हैं, दिल बहलाने के सारे पदार्थ हैं परन्तु राजभवन से अकस्मात जन शून्य स्थान में आजाना अत्यन्त अप्रिय होता है। वह प्रसन्न नहीं थी, कभी कभी जब बहुत व्याकुल हो जाती मन को ढारस देकर कहने लगती "प्रेम का मार्ग भी कितना कठिन है"। मनुष्य को खाना सोना भी दुःख का कारण प्रतीत होने लगता है, वह किसी काम का नहीं रहता, कोई वस्तु उस को सुख नहीं देती, हर समय रोने से ही काम रहता है चिन्ता की अग्नि हृदय में प्रज्वलित रहती है, और यदि ऐसी दशा न हो तो कोई सुख की इतनी चेष्टा भी न करे, प्रीतम के मिलने का यही मार्ग है।

कबीर हंसना दूर कर रोने से कर चित्त।
बिन रोए क्या पाईए, परम प्यारा मीत ॥

देखिये वह कब आते हैं, प्रातः से सायंकाल तक उसे

अपने प्रीतम के आगमन का विचार रहता। मानो इसी प्रकार के विचारों में वह प्रायः निमग्न रहती थी।

एक दिन वह सायंकाल के समय पहाड़ी दुर्ग के भवन के एक झरोखे के पास बैठी हुई विचार रही थी और सामने श्रावन भाद्रों नामी सुन्दर दो झरने बह रहे थे। सूर्य्य की किरणों की लाली के कारण मेघ मण्डल सुहावना प्रतीत होता था। ज्यों सूर्य अस्त होता जाता था बादलों में अनेक प्रकार की नवीन प्रतिमाएं बन २ कर बिगड़ती दिखाई देती थीं। पक्षियों के झुण्ड विश्राम लेने के लिये वृक्षों की ओर उड़े हुए आरहे थे, उन के भिन्न २ प्रकार के शब्द चित्त को प्रसन्न करते थे। चंबली, बेला, केतकी, जूही और मूंगरा की मन्द मन्द सुगन्धि से मस्तिष्क सुगन्धित होता था। शीतल, मन्द और सुगन्धयुक्त पवन बह रही थी जंगली वृक्ष हरे भरे थे। उन की शोभा को देख कर इच्छन कुमारी के चित्त में नाना प्रकार की तरङ्ग उत्पन्न हुई। इतने में सूर्य्य अस्त हुआ और चांदनी का प्रकाश हुआ, हर वस्तु भली भान्ति दीखने लगी, प्रकृति ने दूसरी आकृति धारण की। राजकुमारी देर तक झरोखे में बैठी रही। साथ की सहेलियों ने कितना कहा "बाईजी अब नीचे उतरो, परन्तु वह किसी और धुन में लगी हुई थी। इतने में आबू कुण्ड के मार्ग की ओर से तीन सवार दुर्ग की ओर आते हुए दिखाई दिये। यह कौन

थे, इस विचार से उस का दिल धड़कने लगा। तीनों नवयुवक एक ही अवस्था के थे। तीनों घोड़े की सवारी में प्रवीण परन्तु सब की आकृति एक प्रकार की नहीं थी, तीनों नख से शिख तक शस्त्रों से सुसज्जित थे। तीनों के सिर पर सुन्दर पगड़ियां थीं, और एक की पगड़ी पर कलगी थी, जिस से उस ने जाना कि यह सबका सरदार है।

यह सीधे दुर्ग के द्वार पर पहुंचे, उनको देख कर सबको प्रसन्नता हुई क्योंकि इन के ही बुलाने के निमित्त ब्राह्मण भेजा गया था। सवार घोड़े से नीचे उतरे, राजकुमार ने अपना नाम बताया, दास और दासियां चारों ओर से झुकीं और उन का आदर सत्कार करने लगीं। इच्छन कुमारी झरोखे से उन को आते देख रही थी. यह प्रथम समय था कि उसको अपने पति का दर्शन प्राप्त हुआ था।

पृथ्वीराज ने पूछा तुम्हारी बाईजी कहां हैं? इच्छनकुमारी इन शब्दों को सुन कर धक सी रह गई। मानों किसी ने उस के पांव भूमि में गाड़ दिये। वह चाहती थी कि वहां से उठ खड़ी हो परन्तु हिलना तक कठिन था। दासियों ने कहा ‘वह ऊपर बैठी है, आप चले जाइये”।

जब इच्छनकुमारी ने देखा कि वह ऊपर आरहे हैं कठिनता से वह नीचे उतरी, और दासियों को आज्ञा दी कि गरम पानी स्नानादि के लिये भिजवा दो। सबने स्नानादि कर वस्त्र

बदले और फिर दासियां पृथ्वीराज को उस स्थान पर ले आईं जहां इच्छनकुमारी बैठी थी। वह सिरसे पांव तक पसीने पसीने हो गई। लज्जा के कारण न कुछ बोल सकती थी और न कुछ कह सकती थी। दासियों ने कहा—"बाई जी से यह निमंत्रित अतिथि हैं, इन का आदर सत्कार करना चाहिए। परन्तु वह दिल ही दिल में बहुत व्याकुल थी, अन्त में सहेलियों ने कहा महाराज हम लोग जाते हैं, आप बाई जी बात चीत करें। पृथ्वीराज ने कहा "जिस समय आपका पत्र पहुंचा, उसी समय मैं वहां से रवाना हुआ था" अब तो इच्छनकुमारी को उत्तर देना उचित था, उसने मुसकरा कर कहा, "आप ने बड़ी कृपा की, आप को मार्ग में दुःख हुआ होगा, इसका कारण यह कि मैं आपकी दासी हू" राजकुमार बोला—"तुम को देख कर मेरी थकावट दूर हो गई इस के पश्चात् इच्छनकुमारी ने उन सब के खाने पीने का प्रबन्ध कराया और अपने हाथ से भोजन कराया, रात को तीनों अतिथि एक साथ सोये।

जिस समय पृथ्वीराज अचलगढ़ में था, उसी समय चन्द्रावती नगरी पर आक्रमण किया गया। सोमेश्वर समय पर आ पहुंचा था और खूब युद्ध हो रहा था, परमार बड़ा धैर्यवान् और वीर था, उसकी वीरता के विषय में रामराय एक कवि ने यह दोहा कहा है:—

ध्रुव चले मेरु डिगे, डिगे पर्वत गिर नार।
रण से पीछे क्यों फिरै, शूरबीर परमार ॥

रात तो निद्रा देवी की भेंट हुई, प्रातःकाल इच्छनकुमारी और उसकी दो सहेलियां घोड़ों पर सवार हुईं। तीनों क्षत्री भी अपने घोड़ों की पीठ पर आये और जब उन सबने परमार के भवन को नियमानुसार प्रणाम कर लिया तो पृथ्वीराज उनको लेकर अजमेर पहुंचा। चित्त में तो आया कि चंद्रावती चल कर तनिक भीमदेव के पराक्रम की परीक्षा ले परन्तु फिर उचित यही समझा कि अजमेर चलना चाहिए, पिता की आज्ञा भी थी अजमेर नहीं छोड़ना।

इच्छन कुमारी को भवन में पहुंचा कर पृथ्वीराज ने अपनी सेना की गणना की और फिर शहाबुद्दीन का सामना करने के निमित्त सेना को आज्ञा दी। तलावड़ी के रणक्षेत्र में दोनों में बड़ा घोर युद्ध हुआ जिस में पृथ्वीराज को विजय प्राप्त हुई और शहाबुद्दीन बन्दी कर लिया गया, परन्तु पृथ्वीराज की अज्ञानता ! इस समय पर उस ने शहाबुद्दीन की प्राण रक्षा की, और उसे लौट जाने की आज्ञा देदी।

जब पृथ्वीराज अजमेर लौट आया तो उसे सूचना मिली कि सोमेश्वर चंद्रावती के युद्ध में भीमदेव के हाथ से मारा गया। अन्त में परमार ही का जय प्राप्त हुई थी। इस वास्ते

पृथ्वीराज को राज-तिलक भी दिया गया और राज पुरोहित ने उसके साथ इच्छनकुमारी का विवाह करा दिया और वह उसकी पटरानी बनी।

इच्छन कुमारी चित्त की बहुत पवित्र थी। वह कमला देवी के प्रति दिन पांव लगती और बिना उसके पूछे हुए कोई काम नहीं करती थी। बहुधा मनुष्य कहा करते हैं कि हिन्दू रानियों को राज के काम में बहुत कम अधिकार प्राप्त था। परन्तु वास्तव में कोई भी अच्छा हिन्दू राजा ऐसा दिखाई नहीं देता जो अपनी रानियों से परामर्श न लेता रहा हो। इच्छन कुमारी विशेष कर राजनैतिक व्यवहार समझने में तीव्र बुद्धि रखती थी। पृथ्वीराज सदैव उसके परामर्श अनुसार काम किया करता था। इच्छनकुमारी में एक विशेष गुण यह था कि वह राज-सम्बन्धी समस्त बातों से परिचित थी, किसी भी कर्मचारी के यहां कोई बात हो उसकी सूचना उसे तुरन्त मिल जाती थी।

कुछ समय पश्चात् रानी के एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम ऊषावती रक्खा गया। उसकी बुद्धि भी अपनी माता के समान थी और माता पिता दोनों उसको प्यार करते थे।

पृथ्वीराज के मंत्रियों में से कैलाश्वाही नाम जो प्रधान मंत्री था, अपनी बुद्धि, वीरता और चतुरता के लिए विख्यात था और पृथ्वीराज उसको बहुत चाहता था। परन्तु ऐसा

हुआ कि उसने राजा की एक रखेली स्त्री के साथ जिसका नाम करनाटकी था अनुचित सम्बन्ध कर लिया। जब इच्छन कुमारी को सूचना मिली उसको मंत्री पर बड़ा क्रोध आया। वह दिन उसका चिन्ता में व्यतीत हुआ। जब सायं काल पृथ्वीराज आया तो उसने कहा "आप समय पर आये मैं आप की प्रतीक्षा कर रही थी" पृथ्वीराज बोला—"यह क्या? क्या और दिन आप को मेरे आने का विचार नहीं रहता था?" रानी ने संकेतपूर्वक कहा, "महामंत्री करनाटकी के यहां बैठा हुआ है।" पृथ्वीराज ने तीर को कमान में जोड़ा दूसरे क्षण में मंत्री भूमि पर आ रहा, वह दूसरा तीर चलाने को ही था कि इच्छन कुमारी ने हाथ पकड़ लिया और कहा "वीर क्षत्री कदापि स्त्री पर हाथ नहीं उठाते।"

पृथ्वीराज ने पीछे अपनी राजधानी को दिल्ली में बदल दिया। उस समय भारतवर्ष में उससे विशेष बलवान् कोई राजा नहीं था। सब उसको अपना सरदार समझते थे। शहाबुद्दीन की इच्छा थी कि किसी प्रकार हिन्दुस्तान को पराजय करे। वह समय को भांपा करता था परन्तु कोई भी दाल नहीं गलती थी, न कोई अच्छा समय प्राप्त होता था। उस ने हार पर हार खाई परन्तु धैर्य्य पूर्वक अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। इधर एक ओर पृथ्वीराज अपने बल पौरुष के नशे में चूर था। दूसरी ओर जयचन्द कन्नौज का

राजा संयोग्यता के स्वयम्बर में नीचा देखने के कारण उसका शत्रु बन गया था। स्वयम्बर की लड़ाई में उसके बड़े बड़े सेनापति जो दिल्ली के सिंहासन के पायां समझे जाने के योग्य थे मारे गए। इने गिने दो चार मनुष्य शेष रह गए थे। चौथे बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह करने से राजा सांसारिक भोगों में लिप्त हो गया था। जहां इस प्रकार गिरने की सामग्री प्राप्त हो वहां से भलाई व दैवी कृपा का लोप हो जाता है। सन् १३६१ इस्वी में शहाबुद्दीन फिर सामना करने को तैयार हो गया। पहिली लड़ाई में वह फिर परास्त हुआ और भाग गया। राजपूतों ने समझा कि अब वह सन्मुख नहीं आवेगा। उनकी कुछ सेना तो दिल्ली चली आई, कुछ विजय की खुशी में रंग रलया मनाते रहे। विजयसिंह नामी एक जाति सम्बन्धी शहाबुद्दीन से मिल गया था, जब रात्रि के समय सब मदिरा पान में मस्त थे वह चुप चाप उठा और अपने सम्बन्धियों को लेकर यवनों से जा मिला। इस विश्वासघाती ने शहाबुद्दीन को सामना करने के निमित्त तैयार किया। फिर क्या था, चढ़ाई कर दी गई। राजपूत मुसलमानों पर जा गिरे, कितने मनुष्य मार गिराये। परन्तु समय आ चुका था, भारतवर्ष पर दासत्व का टीका लगाना बदा था। विजयसिंह के छल कपट से कल्याणसिंह भी मारा गया, पृथ्वीराज घायल होकर गिर पड़ा और मूर्छित दशा में

कैद कर लिया गया। बुरे दिन जब आने को होते हैं हर ओर से कठिनाइयां सन्मुख आ जाती हैं। ऊषावती पृथ्वीराज की कन्या बड़ी बीमार थी। रानी उसकी खाट के पास बैठी हुई थी। जब से. ,बाहर घबराहट का हल्ला सुना, रानी के कान खड़े हुए, से दो क्षत्री हांपते हुए आए, और घबराहट की दशा ने लगे "भाग जावो, मान अथवा प्राण बचा ले जावो" एक ने पूछा "क्यों भागें ?" सिपाही घबराये हुए थे, कहने लगे "बात चीत का समय नहीं जल्दी भागो, मुसलमानों की जीत हो गई राज का माल लूटने के निमित्त चले आ रहे हैं देरी करने में मान मर्य्यादा भंग होने का भय है" रानी बोली "महाराज कहां हैं ?" उत्तर मिला कि राजा को हमने भूमि पर गिरा हुआ देखा है।

यह समाचार सुन कर ऊषावती घबरा गई, आंख उठा कर चारों ओर देखने लगी, रानी ने पूछा कि "समरसिंह, कल्याणसिंह कहां हैं ?" सिपाहियों ने उत्तर दिया "वह मारे गये वह लड़ते लड़ते थक गया था मुसलमानों ने मार डाला और यही दशा युवराज कल्याणसिंह की भी हुई" इतना सुनना था कि "राज-कन्या चिल्ला उठी, नाथ प्राणनाथ! तुम युद्ध अग्नि में आहुती होकर जल मरे" यह कह कर वह मूर्छित हो गई, आंखें बन्द हो गईं और फिर नहीं खुलीं। माता की आंखों में आंसू भर आये, जिस दिन से पुत्री रोग ग्रसित

हुई थी माता ने अन्न पानी तक छोड़ दिया था, रात दिन पुत्री की सेवा में लगी हुई थी, वह भी इन समाचारों को सुन कर मूर्छित हो गई। दासियों ने मुंह पर गुलाब छिड़का, जब होश आया तो वह बावली बन कर चिल्लाने [illegible] राज छुटा, पति छुटा, लड़का छुटा तीनों एक साथ [illegible] न्तु मैं नहीं मरी। उसने पुत्री को गोद से चिपटा लिया, [illegible] ! तू ने पिता का साथ दिया, मेरा संसार में कोई नहीं रहा। मैं अब किस की हो कर रहूं, किस के आसरे जिऊं, मैं ने पति का क्यों रण-भूमि में साथ नहीं दिया, धिक्कार है मेरे जीने पर।"

सैनिक कहने लगे—"रानी ! हल चल बहुत विशेष बढ़ता जा रहा है, शत्रु सिर पर खड़े हैं, उचित है कि अब आप नगर को चलिये," यह सुन कर रानी को होश आया उस ने उसी समय सब आभूषण और सुन्दर वस्त्र उतार दिये, सिर के बाल खुल गये, और जैसे कोई बावली बातें करती है उसी प्रकार बकने लगी "मुझे अब किस की चिन्ता है, मुझ को अब किसका भय है, जिसकी चिन्ता थी उस के साथ गई जिसका भय था उस के साथ गया। धन सम्पति सब लुट गई, अब क्या रहा है जिस को मैं भाग कर बचाऊं। अब और कौन सी आपत्ति आवेगी। पति, राज, सन्तान, सब तो छुट गये, चलो चिता तैयार करो बहुत बातें न बनाओ, यवन और म्लेच्छ मेरा क्या करेंगे

मैं सिंह पुरुष की स्त्री हूं, मुझ को किसका भय है, जिस को भागना हो भाग जाए, जिसको प्राण प्यारे हों वह जी बचा ले जावे, मैं न भागूंगी न अपने आपको बचाऊंगी। दिल्लीपति मर गया, चण्डाल पापी शहाबुद्दीन ने उस को मार डाला। महाराज ने उस को नीचा दिखा कर छोड़ दिया था, उस की जीव हत्या नहीं की। दुष्ट को तनिक भी दया नहीं आई, मुझ को कोई हाथ नहीं लगा सकता, मैं अग्नि हूं सब को भस्म कर दूंगी, यह संसार, यह लक्ष्मी, यह मान प्रतिष्ठा सब नाशवान् है। मेरी प्रतिज्ञा, मेरा स्त्री धर्म, मेरा पति प्रेम, यह कभी नाशवान् नहीं हैं। चलो, देर न करो, चिता में अग्नि प्रवेश करो, अभी राजा की लाश ठंडी नहीं हुई होगी मैं भी उसके साथ स्वर्ग को जाऊंगी" ॥

रानी की वीरता के शब्द सुन कर राजपूतों को जोश आ गया। लोगों ने राजकुमारी ऊषावती को उठा लिया थोड़ी दूर ले जाकर चिता बना दी गई। ऊषावती की शव चिता पर रख दी गई। रानी भी खेमा से निकल कर चिता के पास आई, उसकी आंखों में आंसू का कहीं पता भी नहीं था न किसी प्रकार का भय मालूम होता था। वह एक संगमरमर की देवी की मूर्ति वन गई थी। उस के शरीर पर कहीं झुर्री का पता तक नहीं था। दासियें बड़ी संख्या में पीछे २ रोती हुई आ रही थीं। रानी ने चिता के पास आकर माथे पर

चन्दन लगाया, गले में श्वेत फूलों का हार डाल लिया और चिता की प्रदक्षिणा करने लगी। वह उस पर बैठ कर जान देने को थी कि एक सम्बन्धी घोड़ा दौड़ाता हुआ उधर से आ निकला। यह सेना का सेनापति भी था घोड़े से उतर कर झट पट वह रानी के पांव गिरा और उस के पांव से चिमठ गया।

इच्छन कुमारी बोली "बलदेवसिंह यह क्या है! क्या चाहते हो, जो कुछ कहना हो शीघ्र कहो देर न करो, मुझको देर हो रही है। वह बहुत घबराया हुआ था। लड़खड़ाती वाणी से कहने लगा "देवी! महाराज ने तुम को एक संदेशा दिया है। रानी को आश्चर्य्य हुआ "संदेशा कैसा! मेरा पति, ऊपावती का पिता, दिल्ली का राजा वह तो रणभूमि में मारा गया, तुम किस का संदशा लाये हो"? बलदेवसिंह ने उत्तर दिया। "देवी श्री मातु! राजा, घायल हो भूमि पर गिर कर मूर्छित हो गये।" परन्तु रानी बोली इस से क्या प्रयोजन! यथार्थ बात क्यों नहीं कहते। मेरी आज्ञा है देर मत लगावो जो कहना है शीघ्रता से कहो। बलदेवसिंह का चित्त भरा हुआ था। बोला "देवी! राजा बन्दी में है और मुसलमानों के हाथ में पड़ा है"। रानी के नेत्र यह सुनकर लाल हो गये और पूछा दिल्ली पतिका क्या संदेशा है और यह संदेशा तुम सेनापति होकर सुनाने आए हो? तुम सच्चे क्षत्री हो! तुम्हारी माता

है ? कि राजा तो बन्दी में पड़ा और तुम इस प्रकार संदेशा सुनाने की अभिलाषा करते हो और वह भी मुझ को। सेवको और दासियो ! सुनलो यह क्षत्री का पुत्र है हमारी सेना का सेनापति है। दिल्लीपति का दक्षिण हाथ है, राजाका हाथ छोड़ कर, धर्म से मुंह मोड़ कर, हमसे संदेशा कहनेको आया है आज से क्षत्री धर्म नष्ट भ्रष्ट हो गया है। इन के साहस पर ओस पड़ गई। राज तथा धर्म भक्ति जाती रही। अब केवल संदेशा सुनाने वाले रह गये। धन्य है राजपूत ! तेरा मुख धन्य है। धन्य है तेरा घोड़ा, धन्य है तेरी तलवार, तू रणभूमि से आ रहा है। क्या तेरी स्त्री तुझको देखकर प्रसन्न होगी ? क्या तेरी माता की छाती तुझ को देख कर न फट जावेगी ? संदेशा सुनाने वाले राजपूत ! क्या तुझ को लज्जा नहीं आती ? जा दृष्टि से परे हो मुंह मत दिखाओ। मैं दिल्ली पति की सच्ची प्रजा हूं, मैं राजपरायण होना अवश्यक समझती हूं तुम सिंह से सियार बन गये। रण में पांव नहीं गाड़ दिया, वहां से भाग आये। महाराज का ध्यान नहीं किया और उस की स्त्री को संदेशा सुनाने आया है। चाण्डाल ! तू ने किस क्षत्रानी का दूध पिया है तुझको अपने देशका स्वराज्य प्यारा नहीं है। तुम्हारे ऐसे लोग कुल के, देश के और राज के लिये कलंक होते हैं। मुझ को संदेशा मत सुना मैं क्षत्री की कन्या हूं। आपत्ति आई हो अथवा पहाड़ सिर पर गिरने को हो मैं धर्म के मार्ग

से कभी नहीं हटूंगी, मैं राजेश्वरी हूं, बलदेव सिंह। जा दृष्टि से परे होजा!"

रानी ने फिर और लोगों की ओर दृष्टि की। उसके हाथ से तलवार ले ली और जब बलदेव सिंह की तलवार इच्छन-कुमारी के हाथ में आगई तो वह छलांग मारकर सेनापति के घोड़े की पीठ पर आ रही। उस समय उसकी शोभा देखने के योग्य थी। हाथ में नंगी तलवार है, सिर के केश खुले हैं, माथे पर चन्दन लगा हुआ है और वह भयानक मूर्ति बनी हुई घोड़े पर सवार है। उसने सेवकों से कहा। "प्रजा का धर्म है कि राजा की रक्षा करे मैं अकेले लड़ कर उसको शत्रुओं से छुड़ा लाऊंगी। यह प्राण राजा के हैं, यह शरीर राजा का है। यह हाथ और सिर राजा का है, और राजा के काम में कट कर गिरेंगे" राजपूतों को उसकी बात सुन कर जोश आ गया "माता! जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं हम लड़ने से मुंह नहीं मोड़ेंगे, मरेंगे मारेंगे। जीत हार ईश्वर के हाथ है। बलदेव सिंह शोक से हाथ मलने लगा, मैं अब क्या करूं राजा की तो आज्ञा थी कि रानी को आदर पूर्वक किसी अन्य स्थान पर ले जाओ और इस का क्या हाल है। जब वह इस सोच में था रानी ने घोड़े को एड़ लगा दी, यह जा वह जा शत्रुओं की सेना में जा पहुंची। राजपूतों की सेना भी उसके पीछे पीछे जा पहुंची, शत्रु राजा की धन सम्पत्ति लूटने के

लिये आ रहे थे। रानी के साथियों ने उनके बीच में महा प्रलय मचा दी, रानी ललकारती जाती थी मारो! एक भी इन में से जीता न रहने पावे। कौन कायर मनुष्य होगा, जो उस के शब्द सुन कर सिर कटाने को न तैयार होता। न उस के शरीर पर कवच था, न पीठ से ढाल बन्धी थी, न कटार के सिवा कोई हथियार उस के पास था। जो सामने आया गाजर और मूलि की तरह काटा गया। मुसलमानों को भय हुआ यह कौन वीर स्त्री है जो इस निर्भयता से हमारी सेना को नष्ट कर रही है। लूटने वाली सेना या तो मारी गई या भाग गई। रानी ने आगे बढ़कर शेष मुसलमानी सेना का सामना किया। यहां भी वही दशा हुई। परन्तु आप जानते हैं, कि एक के सामने दो बहुत होते हैं यहां केवल इने गिने मनुष्य साथ थे। मुसलमानों ने रानी को घेर लिया और एक ने उछल कर उस को अपने तीर का निशाना बनाना चाहा, उस को वह बचा गई। राजपूतों की सेना ने उस को चारों ओर से घेर लिया और वह उछल उछलकर इस प्रकार लड़ने लगी कि शत्रु भी प्रशंसा करने लगे। अन्त में एक तीर सन्सनाता हुआ आया और वह ऐसा आकर लगा कि इच्छनकुमारी भूमि पर गिर पड़ी। फिर तो ऐसा हुल्लड़ मच गया जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मुसलमानों ने चाहा कि किसी प्रकार रानी का शव हाथ आ जावे, परन्तु राज-

पूतों ने उस को बचा लिया। एक के पश्चात दूसरे मनुष्य ने उसे चिता तक पहुंचा दिया। रानी के साथ जितने वीर राजपूत थे एक एक कर के मर मिटे कोई नाम लेने वाला न रहा।

दासियों ने रानी के शव को चिता पर रक्खा। उस की गोद में ऊषावती को स्थान दिया। फिर चिता में आग लगाई गई। चिता में चन्दन, घी, कपूर इत्यादि बहुत था अग्नि प्रचण्ड होती गई और जब रानी का शरीर जलने लगा अन्य स्त्रियां भी चिता की पांच २ परिक्रमा करके उस पर पतंग की न्याईं गिरती गईं उनकी संख्या बहुत थी। प्रथम आग की एक बहुत बड़ी लपट आकाश तक पहुंची। जिस का प्रकाश चारों ओर फैल गया। संध्या होते २ बहुत बड़ी संख्या धर्मिष्ट और पूजनीय स्त्रियों को जल कर भस्म हो गईं। फिर अन्धकार छा गया और उस समय से लेकर आज तक भारतवर्ष में ऐसा अन्धकार छाया हुआ है कि किसी ओर प्रकाश की झलक दृष्टि नहीं पड़ती।

दिल्ली पति बंदी कर लिया गया और वहां कतल किया गया। भारत का राज छिन गया और विदेशी जन इस पर अधिकारी हुए। हिन्दुओं का धर्म नष्ट भ्रष्ट हुआ, एक को दूसरे से प्रेम नहीं रहा। धर्मात्मा तो एक भी नहीं, संदेशा सुनाने वाले बहुतायत से हैं। लेखों, व्याख्यानों तथा वादा-

वेवाद द्वारा कलेजे को छेद देते हैं परन्तु ऐसा एक भी नहीं है जो प्रेम भाव उत्पन्न करने में सहायता दे तथा प्रेम और भक्ति की शिक्षा दे। हे ईश्वर! क्या यह दशा सदैव रहेगी!

इच्छनकुमारी तू धन्य थी। सती तेरा सतभाव धन्य था। तेरा मातृभाव सच्चा था। विख्यात देवी! तू मर गई, तेरी ऐसी पवित्र मृत्यु हर एक को प्राप्त हो और ईश्वर करे हमारे पाठकगणों के चित में तेरा वृत्तान्त सुन कर देश भक्ति का अंकुर उत्पन्न हो।

हालत किसी की ऐसी बुरी या खुदा न हो।
कोई बला में हमसा कभी मुबतिला न हो॥

१०—मोहिनी।

शब्द ही मारे मर गये, शब्द ही तजया राज।
जो यह शब्द विवेकिया, ताका सरया काज॥
चोट सुहेली शब्द की, पड़ता हि लेत श्वास।
चोट सहे जो शब्द की, तासु गुरू मैं दास॥
शीतलता जब जानिये, सहजै रहै समाय।
पच्छ तजै निरपच्छ होय, शब्द से दुख न पाय॥

मोहिनी बीरमदेव ईदर के राजा की धर्मपत्नी थी। यह जात की भाटी और रामपुर के राजा की पुत्री थी। यह अपने पति पर मन चित्त से न्योछावर थी। और जब से विवाह कर पति के घर आई थी उसको अपनी भक्ति से अपना लिया था।

एक समय का वर्णन है कि दसहरे के दिन राजा की सवारी बाहर निकली। उस दिन राजपूतों में सिनी के वृक्ष पूजने की रीति है। मैदान में एक मस्त पाड़ा घूम रहा था। कई सरदारों ने उस के मारने का साहस किया परन्तु पाड़े

ने बहुतों को घायल कर दिया और कूदता फांदता हुआ नगर की ओर जा निकला। राजा को बड़ी चिन्ता हुई कि यदि पाढ़ा दसहरे के दिन बिना मारे हुए बच गया तो बड़ी लज्जा की बात होगी। वह घोड़े पर सवार था, जब पाढ़ा द्वार के निकट पहुंचा राजा ने उस को अपनी तलवार का निशाना बना दिया। वह किसी के हाथ आने वाला न था, परन्तु राजा ने उसको बड़ी सुगमता से मारकर गिरा दिया, इस प्रसन्नता से उस का शरीर इतना फूल गया कि शरीर से कपड़े का निकलना कठिन पड़ गया। राजा रनिवास में गया, उस को पाढ़े के मारने पर घमण्ड था, कपड़ा शरीर से उतरता नहीं था। मोहिनी पास खड़ी थी उस ने हंस कर कहा "प्राण-नाथ ! आप ने एक घास खाने वाले पशु को मार दिया, यह कौन सी वीरता है। यदि कहीं मेरी जन्म-भूमि के पाढ़े को मारा होता तो बात थी। ऐसे पाढ़े तो स्त्रियां भी सुगमता से मार सकती है।" राजा इस बात से लज्जित हुआ, समझा कि रानी ने मेरा अपमान किया है। उसी समय क्रोध से कहा "मोहिनी ! जब मैं तेरे पिता के घर चल कर वहां का पाढ़ा मार लूंगा तब तेरे भवन में आऊंगा।"

रानी इस बात को सुन कर दंग हो गई। क्या कहती चुप खड़ी रही, बात मुंह से निकल चुकी थी। राजा बाहर चला आया और कई दिन पश्चात् एक बहुत बड़ा और हृष्ट

पुष्ट पाढ़ा मंगवा कर महल में बन्धवा दिया, और रानी के पौरुष व पराक्रम देखने के वास्ते उस को बुला भेजा और पास बैठा लिया । रानी बुद्धिमान थी समझ गई कि राजा ने किस विचार से बुलाया है । वह क्षत्राणी थी, परीक्षा की उस को कुछ परवाह न थी । परन्तु राजा से दीनता पूर्वक कहने लगी "महाराज ! दासी उपस्थित है क्या आज्ञा है ?" राजा बोला "यह पाढ़ा तुम को दिया जाता है । तुम ने कहा था, पाढ़ा स्त्रियां एक ही वार में मार देती हैं" रानी ने कहा– "स्वामी ! मैं अबला हूं, मेरा परिचय आप क्यों लेते हो ?" राजा हंसा "अच्छा अपनी बात को लौटा लो" रानी खिल खिला कर बोली "क्षत्री जाति और वचन को लौटा ले ! यह असम्भव है" उसी समय राजा के हाथ से तलवार लेकर पाढ़े की गर्दन पर तलवार मार तुरन्त भवन की ओर चली गई । उधर वह महल को गई और इधर पशु का सिर धड़ से पृथक जा गिरा । सब रानियों को आश्चर्य हुआ और राजा का घमण्ड जाता रहा ।

राजा ने फिर अपनी रानी को बुला कर कहा "तुम अब अपने देश को जावो और हृष्ट पुष्ट पाढ़ा मंगा कर पालो, हमारे तुम्हारे बीच में जो चूक से विरोध आ गया है दूर हो जावे" रानी पतिव्रता थी राजा को प्रणाम करके रामपुर चली आई । अपने पिता को सारा हाल कह सुनाया और एक

पाड़ा मंगा कर उस को पालने लगी।

दूसरे दसहरे का दिन आ पहुंचा, राजा तो भोग विलास में पड़ कर अपनी बात को भूल गया था। जब रामपुर के दीवान ने रानी का संदेश सुनाया, वह क्रोध से कहने लगा "मुझे पहिले से क्यों नहीं कहला भेजा" परन्तु वह उसी समय रामपुर की ओर रवाना हुआ और जब निकट पहुंचा, एक बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गया। रामपुर के राजा ने उसके आदर सत्कार के लिए अपने भाट को पहिले ही से भेज दिया था। उस ने आकर प्रणाम किया। राजा थका हुआ था दृष्टि सन्मुख नहीं की न उस को कुछ उत्तर ही दिया। भाट का स्वभाव क्रोधी था शत्रुता की अग्नि चित्त में भड़कने लगी। वह जानता था कि राजा किस कारण आया है। उस ने नगर में पहुंच कर पाड़ा के साथ मस्त शेर को भी कटहरे से छोड़ने की आज्ञा ददी। पाड़ा आगे आगे चला और शेर उसके पीछे छोड़ दिया गया, जब बाजे बजने लगे शेर भड़क कर उस ओर जा निकला जिधर राजा बैठा था क्योंकि दूसरी ओर से मनुष्यों ने घेर रक्खा था।

जिस समय रानी ने यह भयानक सूचना सुनी उस के होश उड़ गये कौन जाने क्या हो, इस वास्ते भाटी राजा और रानी दोनों घोड़ों पर सवार होकर उस ओर को चल निकले ताकि समय पर उसकी सहायता कर सकें।

राजा ने जिस समय पाढ़ा को आते देखा वह डर गया क्योंकि वह सचमुच भयानक और लम्बा चौड़ा था। वह सम्भल कर उठा और मारने के लिये तैयार हुआ। इतने में शेर की गर्ज सुनाई दी, कहे तो कठिन न कहे तो कठिन, वह अकेला और भयानक शेर का सामना ! क्या करे क्या न करे, पाढ़े का मारना आवश्यक था, वह उस की ओर झुका और अभी पाढ़े के मारने से छुटकारा मिला था, कि शेर उछलता हुआ उस के पास आ पहुंचा। कौन जाने उस की क्या दशा होती परन्तु उसी समय मोहिनी घोड़ा दौड़ाते हुए आई और उछलते हुए शेर को अपने भाले पर इस प्रकार रोक लिया जैसे गेंद को रोक लेते हैं और दूसरे क्षण में उस का अन्त कर दिया। राजा ने रानी की वीरता देख कर प्रसन्नता प्रगट की और स्त्री पुरुष आनन्द पूर्वक मिले।

बीरमदेव ने अपने चित्त में यह विचारा था कि रामपुर के राजा ने उस के साथ छल किया है परन्तु रानी ने इस सन्देह को निवारण कर दिया। इतने में रामपुर का भाटी राजा भी आकर मिला। बीरमदेव थोड़े दिन उसका अतिथि रहा, जिस स्थान पर शेर मारा गया था वहां पर एक स्तम्भ स्मार्क चिन्ह गाढ़ा गया जिस का नाम "मोहिनी स्तम्भ" रक्खा गया।

यह दोनों वहां से आकर प्रेम-पूर्वक रहने लगे और उन की शेष आयु बड़ी प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत हुई।